अनुच्छेद 35ए

विभेद की विरासत

जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र

अनुच्छेद 35ए
विभेद की विरासत

प्रथम संस्करण : सितम्बर 2017

मूल्य : 30 रुपये

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मुद्रण : प्रगति क्रिएशन्स्, दिल्ली

प्रकाशक
जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र
प्रवासी भवन, 50, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली
दूरभाष : 011–23213039
वेबसाइट : www.jkstudycentre.org

आमुख

अनुच्छेद 35क (35ए) भारत के संविधान में 1954 में जोड़ा गया। तब से वह व्यवहार में है और राज्य की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को गहरे से प्रभावित कर रहा है। इसने भारत के नागरिकों को दो वर्गों में बांट दिया है और एक वर्ग को सदैव के लिये वंचितों की श्रेणी में रख दिया है।

अनुच्छेद 35क (35ए) भारत के संविधान में उस प्रक्रिया से नहीं जुड़ा जो किसी भी संविधान संशोधन के लिये निर्धारित है। इसके विपरीत यह राष्ट्रपति के आदेश से भारतीय संविधान में जोड़ा गया। देश के अनेक जाने–माने संविधान विशेषज्ञ इस प्रक्रिया की वैधानिकता पर सवाल खड़े करते हैं। वे इसे संसद के अधिकारों की अवहेलना मानते हैं। संविधान का मखौल मानते हैं।

यह संयोग है कि जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र के अध्येताओं को अपने अध्ययन के दौरान विभिन्न विषयों पर काम करते हुए राज्य में निवास करने वाले भारतीय नागरिकों की अनेक समस्याएं उजागर हुईं। इनके समाधान की खोज में जो संवैधानिक अड़चनें थीं उनमें से अधिकांश के सूत्र अनुच्छेद 35क (35ए) तक जाते थे। इसी संदर्भ में अनुच्छेद 35क (35ए) और उसके संवैधानिक–सामाजिक–आर्थिक प्रभावों का अध्ययन किया गया ।

यहां यह रेखांकित किये जाने योग्य है कि यह अध्ययन अनुच्छेद 35क की पड़ताल के लिये नहीं था। यह राज्य में रह रहे उन लाखों लोगों की समस्याओं, मानवाधिकारों और जम्मू कश्मीर की शेष देश के साथ एकात्मता में बाधक बन रहे तत्वों की पहचान का था। देश

के अन्य भागों में सामान्य नागरिकों द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं के पीछे आम तौर पर प्रशासनिक लापरवाही होती है किन्तु जम्मू कश्मीर में प्रशासनिक लापरवाही से भी आगे संवैधानिक विसंगतियां लाखों लोगों को मानवीय अधिकारों से वंचित कर रही हैं।

यह जानकारी जब देश के प्रबुद्ध वर्ग को मिली तो वह चिंतित भी हुआ और उद्विग्न भी। कारण था कि यह अनुच्छेद न केवल अपने राज्य के स्थायी निवासियों को विशेषाधिकार देता है बल्कि देश के अन्य नागरिकों के अधिकार सीमित भी करता है। इससे भी आगे, यह ऐसा करने की शक्ति भारत के संविधान से प्राप्त करता है। भारत के नागरिकों के अधिकार भारत के एक हिस्से में सीमित करने का काम भारत के ही संविधान को आगे रख कर किया गया, और इसे देश से छिपाया गया, यह वह स्थिति है जो पूरे देश को चिंतित करती है।

प्रश्न किसी राज्य द्वारा अपने निवासियों को विशेष सुविधाएं दिये जाने पर नहीं है। प्रश्न यह है कि भारत के संविधान का एक हिस्सा, अपने ही दूसरे हिस्से के विरुद्ध जाकर और संविधान की मूल आत्मा की अवहेलना करते हुए कैसे व्यवहार में रह सकता है। यही प्रश्न है जो देश के बुद्धिजीवी वर्ग को मथ रहा है । इस मंथन का ही परिणाम है कि अनेक लोग सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इस विसंगति को दूर करने की अपील लेकर जा पहुंचे हैं। सर्वोच्च न्यायालय यथासमय अपना निर्णय देगा और सभी प्रश्नों पर विराम लग जायेगा। हमें तब तक प्रतीक्षा करनी होगी।

जहां तक जम्मू कश्मीर का संबंध है, स्वतंत्रता से पहले भी जम्मू कश्मीर सहित सभी देशी रियासतों को भारत के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। साइमन कमीशन हो, भारत शासन अधिनियम हो अथवा कैबिनेट मिशन की रिपोर्ट, रियासतों को भारत के साथ जोड़ कर ही देखा गया। इसके बावजूद अलगाववादी धड़े मीडिया के एक वर्ग के समर्थन और सच जानने

वालों की चुप्पी के बल पर भारत विरोधी विमर्श खड़ा करने में एक हद तक सफल रहे।

अब समय आ गया है कि तथ्यों को तर्कों और पृष्ठभूमि के साथ देश के सामने लाया जाय। इस पुस्तक में जम्मू कश्मीर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और संवैधानिक स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ताकि देश में अनुच्छेद 35क (35ए) और उस जैसे अनेक मुद्दों पर अनावश्यक विवाद की जगह गंभीर विमर्श प्रारंभ हो सके और हम एक जीवंत गणतंत्र के रूप में अपने भावी इतिहास को संवार सकें।

आशुतोष भटनागर
निदेशक
जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र

विषय सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	जम्मू कश्मीर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	7
2.	जम्मू कश्मीर का भारत में विलय सम्पूर्ण	17
3.	संवैधानिक प्रक्रिया	24
4.	विवाद का मिथक	30
5.	जम्मू–कश्मीर में घाटे का गणतंत्र	36
6.	अनुच्छेद 370 का दुरुपयोग	41
7.	विभेदकारी अनुच्छेद 35क	50
8.	अनुच्छेद 35क के दुष्परिणाम	53
9.	न्याय की दहलीज पर	56

जम्मू कश्मीर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जम्मू कश्मीर और भारत, यह दो पृथक इकाइयां नहीं हैं। जम्मू कश्मीर भारत है। हजारों वर्षों का यह ऐतिहासिक सत्य है। महाभारत, नीलमत पुराण और राजतरंगिणी जैसे ग्रंथ इसके प्रमाण हैं। मुगल काल हो या सिख राज, जम्मू कश्मीर का राजनैतिक प्रशासन भारतीय इतिहास के बड़े काल खण्ड में देश की मुख्य भूमि से ही चला है। प्राचीन इतिहास में अनेक अवसर ऐसे भी हैं जब कश्मीर साम्राज्य के एक भाग के रूप में भारत का अधिकांश भू–क्षेत्र था।

हिमालय पर बसने वाला समाज अपनी स्थानीय विशेषताओं के साथ पनपा और पल्लवित हुआ। गिलगित, बल्तिस्तान, लद्दाख, कश्मीर, जम्मू, वर्तमान हिमाचल प्रदेश की घाटियों और पंजाब में रहने वाले सामाजिक समूहों की साझी पहचान थी सप्त सैन्धव, अर्थात सात नदियों सरस्वती, रावी झेलम, सतलज, चिनाब और सिंधु के बीच की भूमि और समाज। सांस्कृतिक रूप से यह सभी भारतीय जीवनमूल्यों के साथ जुड़े थे।

राजनैतिक प्रशासन से इतर जम्मू कश्मीर सहित पूरे भारत में एक सांस्कृतिक एकता विद्यमान रही है जो कभी नहीं टूटी। पाकिस्तान प्रेरित अलगाववादी हजारों वर्ष की इस परम्परा से कश्मीर को काटने की निरंतर कोशिश करते आये हैं। वे जानते हैं कि जब तक नयी पीढ़ी अपने इतिहास और संस्कृति से पूरी तरह कट न जाये, तब तक उसे उसकी राष्ट्रीय पहचान

से काटना भी संभव नहीं होता। इस प्रयत्न में ही वे एक ओर भारत–विरोध को अपना हथियार बनाते हैं तो दूसरी ओर विशेष दर्जे जैसी काल्पनिक ढ़ाल को आगे कर समाज को आत्मविस्मृति के लिये विवश करते हैं।

वास्तव में शताब्दियों की उथल–पुथल और हिंसा के बाद एक शताब्दी का डोगरा शासन तुलनात्मक रूप से शांतिपूर्ण रहा। इस काल की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता थी कि डोगराओं ने अपने राज्य का सुदूर क्षेत्रों में विस्तार किया। पहले उन्होंने रियासी, राजौरी और चनैनी जैसी छोटी रियासतों को अपने राज्य में मिलाया उसके बाद 1834 में अपने सेनापति जोरावर सिंह को लद्दाख विजय के अभियान पर भेजा। जोरावर सिंह किश्तवार और जंस्कार होता हुआ बल्तिस्तान पहुंचे। 1841 में एक अन्य अभियान में उन्होंने तिब्बत जीतने का प्रयत्न किया। यद्यपि इस अभियान में जोरावर सिंह की मृत्यु हुई किन्तु अगले अभियान में लद्दाख जीत लिया गया। 16 मार्च 1846 को अमृतसर में हुई संधि के अनुसार अंग्रेजों ने कश्मीर भी गुलाब सिंह को सौंप दिया। इस प्रकार वर्तमान जम्मू कश्मीर राज्य का एकीकरण संभव हुआ।

गुलाब सिंह के बाद क्रमशः रणवीर सिंह और प्रताप सिंह ने राज्य पर शासन किया। महाराजा हरि सिंह, जो एक प्रगतिवादी शासक थे राज्य के अंतिम शासक सिद्ध हुए। दुनियां में आ रहे बदलावों पर उनकी नजर थी। उन्होंने जनता के भले के लिये अनेक लोककल्याणकारी पहल कीं और शासन में भी प्रजा को भागीदारी प्रदान की। बालकों के लिये अनिवार्य शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, अस्पृश्यता उन्मूलन जैसी अनेक पहल उन्हें एक योग्य शासक सिद्ध करती हैं।

भारत के इतिहास में गत एक हजार वर्षों से अधिक का समय संघर्ष का रहा है। आक्रमणों और परस्पर संघर्ष की एक लंबी

श्रंखला चली। शासन व्यवस्थाएं बनती–बिगड़ती रहीं। 1757 तक भारत के बड़े भू–भाग पर मुस्लिम शासन था। इसके बाद स्थितियां बदलीं। एक ओर मराठे शक्तिशाली हुए और महाराष्ट्र से निकल कर धुर उत्तर पश्चिम में अटक तक पहुंचे। दूसरी ओर अंग्रेज भी अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे।

1757 में ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल के दीवानी अधिकार प्राप्त हुए 1857 तक उन्होंने हड़पनीति चलाये रखी और भारत के एक बड़े हिस्से पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। उनकी नीतियों के विरुद्ध देश में 1857 का भीषण स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया जिसने उन्हें अपनी नीतियों में बदलाव पर मजबूर किया। संघर्ष की समाप्ति के बाद ब्रिटेन ने राज्य को ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया। नयी परिस्थिति में उन्होंने हड़पनीति छोड़ कर रियासतों के साथ समझौते और संधियों की नीति अपनायी।

1857 के महासमर के पश्चात उन्हें इन राज्यों का महत्व समझ में आया जिसके बाद ब्रिटेन ने इन राज्यों के संदर्भ में अपनी नीति बदली। इस संघर्ष में सिंधिया, निजाम और सिख जैसे बड़े राज्यों सहित अधिकांश राज्य न केवल चुप रहे बल्कि इनमें से कुछ ने अंग्रेजों की भारी सहायता की। इसके बाद ही महारानी ने घोषणा की कि हम स्थानीय राजाओं के अधिकारों, सम्मान और प्रतिष्ठा का आदर करेंगे। इसके बाद ही उन्होंने राज्यों की आन्तरिक स्वायत्तता बने रहने देने की नीति अपनायी। इसका लाभ यह था कि प्रशासनिक दुरावस्था के कारण जनता में उत्पन्न होने वाला रोष अपने राजा के ही विरुद्ध होता था वहीं अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता का वास्तविक आनंद अंग्रेज लेते थे।

इससे भारत दो प्रकार की शासन व्यवस्था में बंट गया। एक भाग था वह, जिसका सीधा प्रशासन ब्रिटेन से संचालित होता

था और जिसे वे ब्रिटिश इंडिया कहते थे। दूसरा हिस्सा था भारतीय रियासतों का जिसे वे इंडियन स्टेट्स कहते थे। इन भारतीय रियासतों का आन्तरिक प्रशासन वहां के राजा अथवा नवाब चलाते थे। घोषित रूप से अंग्रेज इसमें हस्तक्षेप नहीं करते थे, किन्तु व्यावहारिक तौर पर वे अपना कोई अधिकारी उस राज्य में तैनात रखते थे जो इन राज्यों में ब्रिटिश हितों की चिन्ता करता था और अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता पर ब्रिटिश नियंत्रण बनाये रखता था।

यह राजा अपने आप को संप्रभु मानते थे, किन्तु अंग्रेजों ने इस सीमित संप्रभुता के ऊपर भी परमोच्चता की अवधारणा स्थापित कर ली थी। इन राज्यों के साथ हुई संधियों के अनुसार राज्य की रक्षा, विदेश और संचार जैसे मामले अंग्रेजों के पास थे। यहां तक कि राजा की मृत्यु के पश्चात उसका उत्तराधिकारी कौन हो, इसकी मान्यता भी वे ही देते थे।

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। ए. ओ. ह्यूम नामक अंग्रेज ने उसकी नींव रखी। इसकी स्थापना का उद्देश्य उस समय के प्रभावी लोगों को जोड़ कर एक मंच देना और इसके माध्यम से अंग्रेज शासन के लिये एक 'सेफ्टी वॉल्व' तैयार करना था। वर्षों तक इसकी गतिविधियां अधिवेशन करने, मांग पत्र प्रस्तुत करने और 'लांग लिव द किंग' गा कर विदा हो जाने तक सीमित थीं। लेकिन तिलक और अरविंद जैसे लोगों के प्रवेश के बाद इसका चरित्र ही बदल गया और वह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की प्रतीक बन गयी।

1906 में ऑल इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना के साथ ही उसका कांग्रेस से टकराव रहा तो अंग्रेजों से दोस्ती। इसी बीच तुर्की के खलीफा को हटाये जाने की घटना से अंग्रेजों के प्रति मुस्लिमों का मोहभंग हुआ। 23 सितम्बर 1919 को खिलाफत आन्दोलन का पहला सम्मेलन लखनऊ और 23 नवम्बर 1919

को दूसरा और बड़ा सम्मेलन दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन के दूसरे दिन के सत्र की अध्यक्षता महत्मा गांधी ने की। खिलाफत आंदोलन का समर्थन कर कांग्रेस ने मुस्लिमों का दिल जीतने की कोशिश की।

इसी समय मॉंटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा हुई। भारत शासन अधिनियम 1919 में शासन में भारतीयों का प्रतिनिधित्व बढ़ाया गया और दस वर्ष बाद इसकी समीक्षा की बात की गयी। समीक्षा के लिये 1928 में साइमन कमीशन भारत आया जिसका कांग्रेस ने विरोध किया। 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसमें कमीशन ने 10 प्रतिशत भारतीयों को मताधिकार देने के साथ ही वृहत्तर भारतीय परिषद की स्थापना की सिफारिश की जिसमें प्रान्तों के प्रतिनिधियों के साथ ही देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को भी शामिल करने की भी बात की। इसने सिंध को बंबई से और बर्मा को भारत से पृथक करने की भी सिफारिश की।

ब्रिटिश सरकार में उस समय के भारत सचिव लॉर्ड वर्केनहैड ने 1928 में टिप्पणी की कि स्वराज व स्वशासन की मांग करने वाले भारत के राजनेताओं को ऐसा संविधान तैयार करना चाहिये जो सर्वस्वीकार्य हो। इसे चुनौती की तरह स्वीकार करते हुए 28 फरवरी 1928 को डॉ. एम. ए. अंसारी की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें कांग्रेस, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, खिलाफत कमेटी, भारतीय ईसाई कांग्रेस, राष्ट्रीय उदारवादी संघ सहित 29 दलों ने भाग लिया। दो महीनों के भीतर इस सर्वदलीय समिति की 25 बैठकें हुईं और संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिये पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में सात सदस्यीय समिति गठित की गयी। इसके सदस्य थे– सर तेज बहादुर सप्रू, सर अली इमाम, श्री. एम.एन. अणे, सरदार मंगल सिंह, श्री शुएब कुरैशी, श्री जी आर प्रधान और श्री सुभाष चन्द्र बोस। पं

जवाहरलाल नेहरू को इसमें आमंत्रित सदस्य के रूप में जोड़ा गया। 10 अगस्त 1928 को इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जो नेहरू कमेटी रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रतिवेदन में औपनिवेशिक स्वराज की मांग करते हुए केन्द्र में उत्तरदायी शासन की सिफारिश की गयी। इस समिति ने देशी रियासतों की स्थिति के बारे में भी विचार किया और सुझाव दिया कि प्रस्तावित संघ में देशी रियासतों को तभी सदस्यता प्रदान की जायेगी जब वे आन्तरिक क्षेत्र में प्रजातंत्र की स्थापना करेंगे। इस स्थिति में देशी नरेशों के अधिकारों और विशेषाधिकारों रक्षा की जायेगी। भारत के आजाद हो जाने पर देशी रियासतों के अधिकार समाप्त हो जायेंगे।

1928 के कलकत्ता अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू ने पूर्ण स्वराज्य के समर्थन में ओजपूर्ण भाषण दिये। इस मुद्दे पर नरमपंथियों के साथ मतभेद इतने तीखे हुए कि महात्मा गांधी को हस्तक्षेप करना पड़ा। निश्चय हुआ कि यदि एक वर्ष के अंदर भारत को उपनिवेश का दर्जा नहीं दिया गया तो कांग्रेस का एकमात्र लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य होगा। 1929 के लाहौर अधिवेशन में पं जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। 31 दिसम्बर की अर्धरात्रि में रावी तट पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य की घोषणा की।

तीसरा गोलमेज सम्मेलन 1932 में सम्पन्न हुआ। 1933 में भारत के भावी संविधान का प्रारूप जारी किया गया। नये भारत सचिव सैम्युअल होर ने निचले सदन में कहा –"प्रस्तावित अधिनियम का लक्ष्य भारत को स्वशासन प्रदान करने का नहीं है। यह मात्र संवैधानिक प्रगति के मार्ग का एक नया कदम है।" लॉर्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में दोनों सदनों के सदस्यों की प्रवर समिति गठित की गयी जिसके प्रस्तावित संशोधनों को स्वीकार करते हुए भारत शासन अधिनियम 1935

लागू किया गया।

भारत शासन अधिनियम 1935 में द्विसदन संघीय विधान मण्डल का गठन, समस्त विषयों को संघीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची में वर्गीकृत करने, संघीय न्यायालय की स्थापना करने, सांप्रदायिक तथा अन्य वर्गों के लिये अलग–अलग आरक्षण व्यवस्था, बर्मा को भारत से पृथक करने तथा अदन को ब्रिटिश भारत से मुक्ति का बात कही गयी। इन्हीं प्रस्तावों में यह भी निश्चित हुआ कि भारत एक संघ राज्य होगा जिसमें ब्रिटिश भारत के साथ–साथ देशी रियासतें भी स्वेच्छा से शामिल होंगी।

कुछ ही समय बाद द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया। 20 मार्च 1940 को मौलाना अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में सम्पन्न रामगढ़ कांग्रेस में घोषणा की गयी कि कांग्रेस को पूर्ण स्वराज्य से कम कुछ स्वीकार नहीं है। इसके उत्तर में 8 अगस्त 1940 को लॉर्ड लिनलिथगो ने भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने की घोषणा कर दी। इसी वर्ष मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को अमली जामा पहनाते हुए पृथक मुस्लिम राज्य के गठन का लक्ष्य घोषित किया गया।

तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल भारत की स्वतंत्रता के विरोधी थे। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के सामने 85 हजार ब्रिटिश सैनिकों के समर्पण के बाद यह आवश्यक हो गया था कि भारत को विश्वास में लिया जाय। इसके लिये लेबर पार्टी के सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा गया। 30 मार्च 1942 को क्रिप्स ने अपने प्रस्ताव प्रस्तुत किये। इसके अनुसार भारत में संघ राज्य की स्थापना की जायेगी तथा युद्ध समाप्त होते ही भारत को स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा दिया जायेगा। एक संविधान सभा का गठन किया

जायेगा जो भारत के लिये संविधान बनायेगी। इसमें प्रान्तीय विधानसभाओं के अतिरिक्त रियासतों के शासकों द्वारा नामित सदस्यों को भी प्रतिनिधित्व दिया जायेगा।

1943 में लॉर्ड लिनलिथगो के स्थान पर लॉर्ड बेवेल को वायसराय नियुक्त किया गया। भारत में गतिरोध को दूर करने के लिये 25 जून 1945 को शिमला में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें विभिन्न दलों और सम्प्रदायों के 21 प्रमुख नेताओं को बुलाया गया। बेवेल योजना के अनुसार अस्थायी राष्ट्रीय सरकार में 25 करोड़ हिन्दू और 9 करोड़ मुस्लिमों के लिये बराबर संख्या रखने का विरोध हिन्दू महासभा ने किया। जिन्ना ने इससे भी आगे बढ़ कर आग्रह किया कि सभी मुस्लिमों को नामित करने का अधिकार मुस्लिम लीग को दिया जाय जिसका कड़ा प्रतिवाद कांग्रेस ने किया। बात आगे नहीं बढ़ सकी।

जुलाई 1945 में ब्रिटेन में सत्ता परिवर्तन हुआ और भारत के प्रति नकारात्मक भाव रखने वाले चर्चिल का दल हार गया। लेबर पार्टी विजयी हुई। क्लीमेंट एटली प्रधानमंत्री और पैथिक लॉरेंस भारत मंत्री बने। प्रधानमंत्री एटली और सम्राट ने भारत के लिये पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की। 1945 के अंत में केन्द्रीय विधान सभा और 1946 के प्रारंभ में प्रान्तीय चुनाव सम्पन्न हुए। मुस्लिम बहुल पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत सहित आठ राज्यों में कांग्रेस ने बहुमत पाकर सरकार बनायी। पंजाब में कांग्रेस और अकाली दल के सहयोग से खिजर हयात खां ने सरकार बनायी। सिंध और बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार बनी।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अंतरराष्ट्रीय जटिलताओं और दवाबों के चलते ब्रिटेन के लिये यह असंभव हो गया था कि 40 करोड़ लोगों को गुलाम बनाये रख सके। स्थिति का अध्ययन करने के लिये ब्रिटिश सरकार के तीन मंत्रियों का दल भारत

आया जिसे कैबिनेट मिशन कहा गया। कैबिनेट मिशन 24 मार्च 1946 को दिल्ली पहुंचा। भारत मंत्री लॉर्ड पैथिक लॉरेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स और सर ए.वी. अलेक्जेंडर इसके सदस्य थे। मिशन का उद्देश्य था स्वतंत्र भारत की अन्तरिम सरकार के स्वरूप और भावी संविधान के प्रारूप पर चर्चा।

अभी तक की स्थिति में भारतीय रियासतों को ब्रिटिश सरकार का यह आश्वासन था कि उन्हें बिना विश्वास में लिये भावी भारत की व्यवस्था में शामिल नहीं किया जायेगा। इस संबंध में लॉर्ड वेवेल ने एक पत्र 12 मई 1946 को नरेन्द्र मण्डल के अध्यक्ष को लिखा था।

लेकिन ठीक इसी तिथि को कैबिनेट मिशन ने एक मसौदा तैयार किया जिसके अनुसार क्राउन के साथ इन रियासतों के संबंध समाप्त हो जायेंगे और उनके द्वारा परमोच्च सत्ता को सौपे गये राज्यों के अधिकार उन्हें वापस कर दिये जायेंगे। इसके अनुसार परमोच्चता से उत्पन्न शून्य को ब्रिटिश भारत की परवर्ती सरकार के साथ संघराज्य संबंध स्थापित कर पूरा किया जा सकता है। यह मसौदा 22 मई को जारी किया गया।

कैबिनेट मिशन ने घोषणा की कि–

1. परमोच्चता न तो ब्रिटिश सम्राट के साथ रह सकती है और न ही नयी सरकार को हस्तांतरित की जा सकती है। लेकिन रियासत के शासकों ने भारत में होने वाले घटनाक्रम में सहयोग करने की तैयारी और इच्छा जतायी है।
2. नयी संवैधानिक व्यवस्था रियासतों के साथ समझौते के आधार पर निश्चित होगी। आवश्यक नहीं है कि वह एक जैसी हों।
3. भारत एक संघ राज्य होगा जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रान्त और देशी राज्य सम्मिलित होंगे। विदेश मामले, रक्षा और

संचार संबंधी मामलों को छोड़ कर अन्य विषय रियासतों के पास रहेंगे।

4. प्रारंभिक स्थिति में संविधान सभा में रियासतों का प्रतिनिधित्व समझौता समिति के माध्यम से होगा।
5. संघ की अपनी कार्यपालिका और विधान सभा होगी जिसका गठन ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों से होगा। संविधान सभा के अंतिम चरण में रियासतों की ओर से वार्ता के आधार पर प्रतिनिधि चुने जायेंगे जिनकी संख्या 93 से अधिक नहीं होगी।
6. भारत के लिये यह विकल्प था कि वह राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वीकार करे अथवा नहीं।

कांग्रेस और लीग, दोनों ही इस योजना से सहमत हो गये। महात्मा गांधी ने भी अपनी सहमति जताई। पं. नेहरू ने कहा– एक बार सत्ता में आ जाने के बाद कांग्रेस इस योजना को अपने अनुकूल बनायेगी। इस वक्तव्य से क्षुब्ध जिन्ना ने प्रस्तावों पर अपनी सहमति वापस ले ली और 16 अगस्त को प्रत्यक्ष कार्रवाई की घोषणा कर दी।

जिस समय अंग्रेज विदा हुए, भारत का एक बड़ा हिस्सा अंग्रेजों के सीधे नियंत्रण में था और बाकी हिस्से पर लग–भग 575 रियासतें अवस्थित थीं। द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में उत्पन्न हो रही नयी विश्व–व्यवस्था में अपनी प्रासंगिकता बरकरार रखने के लिये अंग्रेजों ने जाते–जाते भी ब्रिटिश इंडिया का विभाजन कर दिया। ब्रिटिश संसद द्वारा पारित भारत स्वाधीनता अधिनियम 1947 के अनुसार पश्चिमी पंजाब, खैबर पख्तूनख्वां, सिंध, पूर्वी बंगाल, और असम का सिलहट जिला काट कर पाकिस्तान नाम का एक नया उपनिवेश बना दिया गया। शेष भू–भाग भारत बना रहा।

जम्मू कश्मीर का भारत में विलय सम्पूर्ण

15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता की घोषणा हुई। इससे एक दिन पहले ही ब्रिटिश भारत को दो राज्यों में विभाजित कर दिया गया था। यह मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को कांग्रेस की स्वीकृति की अनिवार्य परिणति थी।

किन्तु मुस्लिम लीग को छोड़ कर सभी यह उम्मीद कर रहे थे कि तात्कालिक उन्माद कम हो जाने के बाद विभाजन को अप्रासंगिक बनाया जा सकेगा। अंग्रेजों को भी कहीं न कहीं यह भय बना हुआ था इसलिये उन्होंने यह जरूरी समझा कि इसके बीच कुछ ऐसे मुद्दे अनिर्णीत बने रहें जिनके चलते दोनों देशों के बीच वैमनस्य बना रहे। जम्मू कश्मीर में उन्हें यह संभावना नजर आयी और उन्होंने इसे न केवल विवादित बनाया बल्कि इस विवाद को जटिल बनाने में पर्याप्त भूमिका भी निभायी।

जम्मू कश्मीर राज्य देश की सबसे बड़ी रियासत थी। दोनों देशों की सीमा पर होने के कारण दोनों ही देश स्वाभाविक ही उसे अपने साथ जोड़ने के इच्छुक थे। किन्तु भारत स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अनुसार दोनों में से किसी भी देश में विलय पर निर्णय करने के एकमात्र अधिकारी वहां के राजा हरि सिंह थे। जिन्ना महाराजा को पाकिस्तान के साथ विलय हेतु दवाब डाल रहे थे। महात्मा गांधी ने उन्हें जनता की इच्छा के अनुरूप निर्णय करने को कहा।

गवर्नर जनरल माउंटबेटन महाराजा को अपनी ओर से यह आश्वासन भी दे चुके थे कि यदि वे पाकिस्तान में विलय का निर्णय करते हैं तो भारत इसे अन्यथा नहीं लेगा। माउंटबेटन और लॉर्ड इस्मे ने महाराजा को पाकिस्तान के पक्ष में तुरन्त निर्णय लेने की सलाह देते हुए यह भी कहा कि यदि वे ऐसा करते हैं तो कांग्रेस बुरा नहीं मानेगी।

यह भी एक तथ्य है कि जम्मू कश्मीर के पाकिस्तान में विलय के फैसले पर भारत को आपत्ति न होने संबंधी सुझाव ने स्टेट्स डिपार्टमेंट को भी प्रभावित किया था जिसकी राज्यों के विलय की कार्यवाही में मुख्य भूमिका थी। यह आश्चर्यजनक ही था कि स्टेट्स डिपार्टमेंट द्वारा महाराजा हरि सिंह को भारत में विलय के लिये सम्पर्क भी नहीं किया गया। यहां तक कि विभाजन से पूर्व विलय की शर्तों पर चर्चा करने के लिये आयोजित समिति की बैठक में आमंत्रित राज्यों के प्रतिनिधियों की सूची में जम्मू कश्मीर के प्रतिनिधि का नाम भी नहीं था जबकि वह देश की सबसे बड़ी और प्रभावी रियासत थी। इसके बावजूद महाराजा हरि सिंह ने भारत में विलय का निर्णय किया।

26 अक्तूबर 1947 को महाराजा हरिसिंह ने भारत में जम्मू–कश्मीर का विलय उसी वैधानिक विलय पत्र के आधार पर किया, जिसके आधार पर शेष सभी रजवाड़ों का भारत में विलय हुआ था।

मैं, श्रीमान् ...... महाराजाधिराज श्री हरी सिंह जी .... जम्मू व कश्मीर का शासक .... "रियासत पर अपनी संप्रभुता का निर्वाह करते हुए एतद्द्वारा अपने इस विलय के प्रपत्र का निष्पादन करता हूं ...."

यह वही प्रपत्र है जिस पर देश की सभी रियासतों के शासकों ने हस्ताक्षर किये थे। जम्मू कश्मीर के शासक महाराजा हरी

सिंह ने भी इस प्रपत्र पर ही हस्ताक्षर किये थे। इस विलय को स्वीकार करते हुए तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन ने लिखा ".....”मैं एतद्द्वारा इस विलय पत्र को स्वीकार करता हूं" दिनांक सत्ताईस अक्तूबर उन्नीस सौ सैंतालीस (27 अक्तूबर–1947)

यह भी वही भाषा है जिसे माउंटबेटन ने अन्य सभी रियासतों के विलय को स्वीकार करते हुए लिखा था। जब विलय का प्रपत्र और स्वीकृति, दोनों ही सभी रियासतों के समान थे तो विवाद का विषय ही कहां बचता है ? अतः कथित विवाद का जो रूप आज हमें अनुभव होता है, वह तथ्य नहीं बल्कि प्रयासपूर्वक गढ़ा गया एक भ्रम है जिसे बनाये रखने में न केवल अलगाववादी तत्वों की बल्कि पिछली राज्य व केन्द्र सरकारों की भी भूमिका है।

जम्मू–कश्मीर का भारत में विलय पूर्ण व अंतिम है। इसके बावजूद एक वर्ग द्वारा दशकों से विलय को अपूर्ण और सशर्त बताने का भारत विरोधी अभियान छेड़ा हुआ है। निस्संदेह इस अभियान को परोक्ष रूप से विदेशी शक्तियों का समर्थन हासिल है। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इस मुद्दे को उठाने के पाकिस्तान के प्रयत्न को जो समर्थन हासिल होता है उसे ब्रिटिश–अमेरिकी लॉबी की मदद के बिना नहीं पाया जा सकता।

जम्मू कश्मीर के भीतर ही नहीं, उसके बाहर शेष देश में भी विलय संबंधी दुष्प्रचार ने विभ्रम का निर्माण किया है। भारत सरकार द्वारा इसके निवारण के लिये अपेक्षित प्रयास नहीं किये गये जिसके कारण यह भ्रम और गहरा हुआ। इसके लिये अभी तक चले आ रहे किस्से–कहानियों से निकाल कर इस मुद्दे को तथ्यों के आलोक में देखना होगा। साथ ही यह भी तय करना होगा कि औपनिवेशिक काल की ब्रिटिश–अमेरिकी कुटिलताओं को विरासत मान कर कब तक ढोया जायेगा।

आज आवश्यकता है कि इस मुद्दे की असलियत लोगों के सामने आये ताकि देश में स्वस्थ जनमत निर्माण हो सके तथा समाधान की दिशा में आगे बढ़ा जा सके।

1947 में पाकिस्तान की ओर से हुए आक्रमण की भारी कीमत राज्य के नागरिकों को चुकानी पड़ी जिसके कारण आम नागरिक भी पाकिस्तान को आक्रमणकारी मानता था और उसके साथ विलय की सोच भी नहीं सकता था। यहां तक कि प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के सबसे निकट रहे शेख अब्दुल्ला, जिन्हें राज्य का प्रधानमंत्री बनाये जाने की जिद के चलते ही जम्मू–कश्मीर के भारत में विलय में इतना विलम्ब हुआ, अपने ही कारणों से जिन्ना के द्विराष्ट्रवाद का विरोध करते थे और पाकिस्तान में विलय के पूरी तरह खिलाफ थे।

इसके बावजूद जम्मू कश्मीर के भारत में विलय को लेकर जो भ्रम उत्पन्न हुआ उसका मुख्य कारण पं. नेहरू द्वारा राज्य के साथ अन्य रियासतों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाया जाना है। विलय करने वाली रियासतों के साथ सामान्य नीति यह थी कि एक चुनी हुई स्थानीय लोकप्रिय सरकार बनायी जाय जिसमें एक मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री राजा के दीवान की वरिष्ठ स्थिति में हो जब तक कि नवस्वाधीन राष्ट्र व्यवस्था को अपने हाथ में न ले ले। जम्मू कश्मीर में यह व्यवस्था भिन्न रूप में पहले से ही लागू थी। किन्तु पं नेहरू की यह जिद थी कि महाराजा विलय के पूर्व ही शेख अब्दुल्ला को सत्ता सौंप दें। महाराजा को यह स्वीकार नहीं था। महाराजा की इस हिचक को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है।

यह नहीं भूलना चाहिये कि हरि सिंह देश की सबसे बड़ी रियासतों में से एक के महाराजा थे। महाराजा हरि सिंह एक देशभक्त राजा थे । 'नरेन्द्र मण्डल' के अध्यक्ष की हैसियत से ही उन्होंने लंदन में हुए गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया था

जिसमें उन्होंने दृढ़ता से भारत की स्वतंत्रता का पक्ष रखा था। उन्होंने ब्रिटिश प्रतिनिधियों को यह भी परामर्श दिया कि वे रियासतों के राजाओं की स्थिति के बारे में अधिक चिंतित न हो और स्वतंत्रता के बाद रियासतों के साथ संबंध का मामला वे रियासतों के राजाओं पर छोड़ दें। स्वाभाविक ही अंग्रेजों को महाराजा का यह आग्रह पसंद नहीं आया और उन्होंने महाराजा को सबक सिखाने का निश्चय कर लिया।

इस दृष्टि से शेख मुहम्मद अब्दुल्ला का उदय जम्मू कश्मीर की राजनीति में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। अब्दुल्ला श्रीनगर की बाहरी सीमा पर स्थिति एक गांव सोरा के निवासी थे। जन्म के पूर्व पिता को खो चुके अब्दुल्ला प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात उच्च शिक्षा के लिये पहले लाहौर और बाद में अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय गये जहां उनका सम्बंध वामपंथी रुझान के लोगों के साथ आया। 1931 में महाराजा के विरुद्ध श्रीनगर में हुए एक आंदोलन ने अब्दुल्ला को नेता के रूप में स्थापित करने का अवसर दिया।

1932 में शेख ने कश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस नामक घाटी के पहले राजनैतिक दल का गठन किया। 1939 में इसका नाम बदल कर नेशनल कांफ्रेस किया गया। इस बीच शेख ने समय की करवट को पहचाना और ब्रिटिश भारत में कांग्रेस नेतृत्व से संबंध बनाये। संभवतः यह कांग्रेस का प्रभाव ही था कि शेख ने 1944 में नया कश्मीर नाम से एक घोषणापत्र जारी किया जिसमें संसदीय लोकतंत्र, स्वतंत्र न्ययापालिका तथा सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक सुधारों की बात की गयी। इसके कारण राज्य से बाहर कांग्रेस के रूप में उन्हें एक बड़ा समर्थक प्राप्त हो गया वस्तुतः जिसके हाथ में अंग्रेजों के जाने के बाद सत्ता आने वाली थी। आगे चल कर यही संबंध निर्णायक साबित हुए।

जम्मू कश्मीर में स्वतंत्रता से पूर्व नेशनल कांफ्रेंस और मुस्लिम कांफ्रेंस, दो प्रमुख दल सक्रिय थे। नेशनल कांफ्रेंस का केवल कश्मीर घाटी में अच्छा प्रभाव था। मुस्लिम कांफ्रेंस को जम्मू के कुछ क्षेत्रों में समर्थन हासिल था। जब भारत की स्वतंत्रता का निश्चय हो गया और यह चर्चा शुरू हो गयी कि अंग्रेज कांग्रेस को सत्ता सौंपेंगे, साथ ही भारत का एक हिस्सा काट कर पाकिस्तान नाम का नया राज्य बनेगा जिसकी बागडोर जिन्ना संभालेंगे, तो शेख के मन में भी यह इच्छा बलवती हो गयी कि कश्मीर की सत्ता उन्हें सौंपी जानी चाहिये।

1946 में नेशनल कांफ्रेस ने 'कश्मीर छोड़ो' का नारा दिया जो अंग्रेजो के विरुद्ध नहीं बल्कि महाराजा के खिलाफ था। उनकी मांग थी कि कांग्रेस की तर्ज पर नेशनल कांफ्रेंस को सत्ता सौंप कर महाराजा कश्मीर छोड़ दें। परिणामस्वरूप महाराजा ने राजद्रोह के आरोप में शेख को कारावास में डाल दिया। पं नेहरू ने शेख के आंदोलन का समर्थन किया जो महाराजा और नेहरू के संबंधों में खटास का कारण बना।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय रियासतों को एक शासन सूत्र में बांधने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। मुस्लिम बहुलता के कारण जहां पाकिस्तान के नेतृत्व को लगता था कि जम्मू कश्मीर को उसके साथ मिलना चाहिये वहीं अंग्रेज भी यही चाहते थे। जम्मू कश्मीर के महाराजा हरी सिंह कुछ फैसला लें, इससे पहले ही पाकिस्तान ने राज्य पर आक्रमण कर दिया। 26 अक्तूबर को महाराजा ने दिल्ली की शेख अब्दुल्ला को सत्ता सौंपने की मांग को स्वीकार करते हुए राज्य का भारत में अधिमिलन कर दिया।

किन्तु इससे पूर्व शेख को जेल से तभी छोड़ा गया ,जब उसने महाराजा के प्रति निष्ठा की शपथ ली। 26 सितम्बर 1947 को महाराजा को लिखे गये अपने पत्र में शेख अब्दुल्ला ने लिखा–

"इस बात के बावजूद कि भूतकाल में क्या हुआ है, मैं महाराजा को यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैंने और मेरी पार्टी ने कभी भी महाराज या उनकी राजगद्दी या उनके राजवंश के प्रति कभी भी अनिष्ठा की भावना नहीं रखी है। ...... महाराज, मैं अपने और अपने संगठन की ओर से आपको पूर्ण निष्ठा व समर्थन का आश्वासन देता हूं ... पत्र खत्म करने से पहले महाराज मैं एक बार फिर अपनी अविचल निष्ठा का आश्वासन देता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह मुझे महामहिम के संरक्षण में वह अवसर प्रदान करें कि इस राज्य को शांति, समृद्धि और सुशासन हासिल हो सके।"

1 अक्तूबर 1947 को श्रीनगर के हजूरी बाग में एक सभा को संबोधित करते हुए शेख ने कहा– 'जब तक मेरे शरीर में खून की आखिरी बूंद है तब तक मैं द्विराष्ट्र के सिद्धांत में विश्वास नहीं करूंगा'। यह दर्शाता है कि मतभेद के बावजूद शेख स्वयं भी पाकिस्तान के साथ जाने को तत्पर नहीं थे। तथ्य यह भी बताते हैं कि जिन्ना की भी रुचि जम्मू कश्मीर में तो थी लेकिन शेख के लिये पाकिस्तान के दरवाजे बंद हो चुके थे।

यद्यपि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अनुसार विलय का निर्णय करने का अधिकार केवल शासक को ही था, जनमत का वहां कोई संदर्भ ही न था, फिर भी, कहा जा सकता है कि जम्मू कश्मीर का बहुमत, यहां तक कि मुस्लिम बहुमत भी भारत में विलय के विरुद्ध नहीं था।

संवैधानिक प्रक्रिया

17 जून 1947 को भारतीय स्वाधीनता अधिनियम–1947 ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किया गया। 18 जुलाई को इसे शाही स्वीकृति मिली जिसके अनुसार 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई तथा उसके एक भाग को काट कर नवगठित राज्य पाकिस्तान का उदय हुआ।

इस अधिनियम से ब्रिटिश भारत की रियासतें अंग्रेजी राज की परमोच्चता से तो मुक्त हो गईं, परन्तु उन्हें राष्ट्र का दर्जा नहीं मिला। उन्हें यह सुझाव दिया गया कि भारत या पाकिस्तान में जुड़ने में ही उनका हित है। इस अधिनियम के लागू होते ही रियासतों की सुरक्षा की अंग्रेजों की जिम्मेदारी भी स्वयमेव समाप्त हो गई।

भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 के अनुसार विलय के बारे में निर्णय का अधिकार राज्य के राजा को दिया गया था। यह भी निश्चित किया गया कि कोई भी भारतीय रियासत उसी स्थिति में दो राष्ट्रों में से किसी एक में मिली मानी जायेगी, जब गवर्नर जनरल उस रियासत के शासक द्वारा निष्पादित विलय पत्र को स्वीकृति प्रदान करें। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 में सशर्त विलय के लिये कोई प्रावधान नहीं था।

संविधान के अनुच्छेद 155,156 और 157 के अनुसार जिस प्रकार ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति की गयी, उसी के समकक्ष बी श्रेणी की रियासतों में

राजप्रमुख की नियुक्ति हुई। जम्मू कश्मीर के संदर्भ में वहां के महाराजा को ही राजप्रमुख नियुक्त किया गया। राज्यपाल की भांति ही राजप्रमुख की नियुक्ति भी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त थी। कर्तव्यपालन में अक्षम सिद्ध होने पर राष्ट्रपति उसे हटाकर उसके स्थान पर उपयुक्त उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर सकते थे। यही व्यवस्था हैदराबाद, मैसूर और पार्ट बी की अन्य रियासतों के लिये भी थी।

प्रारंभ में यह अपेक्षित था कि रियासतें और उनके संघ, सभी अपने लिये संविधान की रचना करेंगे। यह भी मत था कि संघीय संविधान सभा द्वारा रियासतों के लिये संविधान की रचना उनकी आन्तरिक संप्रभुता में हस्तक्षेप होगा। लेकिन शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि ऐसा होने पर विभिन्न रियासतों के संविधान में समरूपता के अभाव में अनावश्यक कठिनाइयां उत्पन्न होंगी। इसलिये निश्चय किया गया कि रियासतों के लिये एक मानक संविधान की रचना की जाय जिससे रियासतों के संविधानों के मध्य आधारभूत समरूपता स्थापित हो सके। इसके लिये श्री बी. एन. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया।

यह प्रयास जब आगे बढ़ा तो यह स्पष्ट होने लगा कि सभी रियासतों के लिये अलग संविधान का विचार भी वस्तुतः उनकी राजशाही की ही विरासत को आगे बढ़ाने वाला था, जिसके लिये भावी गणतांत्रिक व्यवस्था में कोई स्थान न था। परिणामस्वरूप 19 मई 1949 को राज्यों के मंत्रालय के साथ विभिन्न रियासतों के प्रमुखों की बैठक में उनकी सहमति से यह निर्णय लिया गया कि रियासतों के लिये भी संविधान रचना का काम भारत की संविधान सभा करेगी और इसे भारतीय संविधान का हिस्सा बनाया जायेगा।

इसके अनुसार संविधान का अध्ययन कर उसके प्रारूप में

संशोधन सुझाने के लिये श्री एम. के. वेलोडी की अध्यक्षता में एक समिति बनायी गयी। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों और रियासतों के बीच संवैधानिक समानता स्थापित हो सके इस दृष्टि से यह संशोधन नये संविधान में जोड़े जाने थे। प्रारूप समिति से चर्चा के उपरान्त सामने आने वाले संशोधनों पर रियासतों की संविधान सभाओं द्वारा विचार करना इस प्रक्रिया में शामिल था।

इस समय तक सौराष्ट्र, त्रावणकोर–कोचीन और मैसूर की संविधान सभाएं बन चुकी थीं। सौराष्ट्र की संविधान सभा ने इसे यथावत स्वीकार कर लिया। अन्य दोनों ने कुछ संशोधन सुझाये। इनमें से कुछ संशोधनों पर भारत की संविधान सभा ने चर्चा कर भारत के संविधान में जोड़ने की सहमति दे दी। शेष प्रस्तावों पर इन राज्यों की संविधान सभाओं के प्रतिनिधियों से चर्चा की गयी और उनके संतुष्ट होने पर इन प्रस्तावित संशोधनों को छोड़ दिया गया। यह सारी प्रक्रिया जिस सहजता से सम्पन्न हुई उससे यह स्पष्ट था कि रियासतें भी संवैधानिक एकीकरण की इस प्रक्रिया के प्रति उत्साहित थीं।

जिन तीन राज्यों में संविधान सभा मौजूद थी वहां उसे प्रस्तावित भारतीय संविधान के अंतिम प्रारूप का अध्ययन करने का अवसर दिया गया। किन्तु जिन राज्यों में अब तक संविधान सभा का निर्वाचन भी संभव नहीं हो सका था वहां भारतीय संविधान को लागू करने की योजना बताते हुए तत्कालीन राज्यों के मंत्री सरदार वल्लभ भई पटेल ने कहा–

".......... यह खेद का विषय है कि अधिकांश राज्यों और राज्यों के संघों में अभी तक विधानसभा के चुनाव सम्पन्न नहीं हो सके हैं। न ही यह संभव है कि भारतीय संविधान का अंतिम प्रारूप तैयार होने से पूर्व वहां के चुनाव करा लिये जायें। इसलिये निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से अन्य राज्यों और उनके

संघों (सौराष्ट्र, कोचीन–त्रावणकोर और मैसूर में संविधान सभा का गठन हो चुका था) की निवासी जनता की राय जानना आज संभव नहीं है। इसलिये राजा अथवा राजप्रमुख की स्वीकृति से इन राज्यों में संविधान को लागू करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। निस्संदेह वे अपने मंत्रिमंडल से इस पर चर्चा करके ही निर्णय करेंगे।

........मुझे विश्वास है कि उन राज्यों का इस सदन में प्रतिनिधित्व कर रहे सदस्य और वहां की जनता भी यह नहीं चाहेगी कि जब तक राज्यों में निर्वाचन न हो जाय तब तक भारतीय संविधान को प्रयोग में आने से रोका जाय।...... मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि इन राज्यों में गठित होने वाली पहली विधान सभा द्वारा इस संबंध में दिये गये सुझावों पर गंभीरता के साथ विचार किया जायेगा"।

नवम्बर माह के दूसरे व तीसरे सप्ताह में सभी राजाओं और राजप्रमुखों ने उदघोषणा कर भारत की संविधान सभा द्वारा तैयार संविधान को अपने राज्य के संविधान के रूप में लागू कर दिया। जम्मू कश्मीर के राजप्रमुख महाराजा कर्ण सिंह ने भी 25 नवम्बर 1949 को तत्संबंधी उदघोषणा की।

1951 में राज्य संविधान सभा का निर्वाचन हुआ। संविधान सभा में विपक्षी दलों के अधिकांश प्रत्याशियों के नामांकन निरस्त कर दिये गये। सभी 75 सदस्य शेख अब्दुल्ला की पार्टी नेशनल कांफ्रेंस के थे जिनमें से 73 कोई अन्य प्रत्याशी न होने के कारण निर्विरोध निर्वाचित मान लिये गये। मौलाना मसूदी इसके अध्यक्ष बने। इसी संविधान सभा ने 6 फरवरी 1954 को राज्य के भारत में विलय की अभिपुष्टि की। 14 मई 1954 को भारत के महामहिम राष्ट्रपति ने भारतीय संविधान के अस्थायी अनुच्छेद 370 के अंतर्गत संविधान आदेश (जम्मू व कश्मीर पर लागू) जारी किया जिसमें भारत के संविधान को कुछ अपवादों

और सुधारों के साथ जम्मू व कश्मीर राज्य पर लागू किया गया।

राज्य का अपना संविधान 26 जनवरी 1957 को लागू किया गया जिसके अनुसार :—

अनुच्छेद—3 : जम्मू—कश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग है और रहेगा।

अनुच्छेद—4 : जम्मू—कश्मीर राज्य का अर्थ वह भू—भाग है जो 15 अगस्त 1947 तक राज्य के राजा के आधिपत्य या संप्रभुता के अधीन था।

अनुच्छेद—5 : भारत के संविधान के अनुसार राज्य संबंधी जिन विषयों पर भारत की संसद विधि निर्माण के लिये प्राधिकृत है, उन विषयों को छोड़ कर शेष सभी विषयों पर राज्य कार्यपालक व विधायक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

इसी संविधान के अनुच्छेद—147 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अनुच्छेद— 3, 5 व स्वयं अनुच्छेद 147 को कभी बदला नहीं जा सकता।

14 नवम्बर 1962 को संसद में पारित संकल्प एवं 22 फरवरी 1994 को संसद में सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से यह कहा गया कि जो क्षेत्र चीन द्वारा (1962 में) व पाकिस्तान द्वारा (1947 में) हस्तगत कर लिये गये, वह हम वापिस लेकर रहेंगे, और इन क्षेत्रों के बारे में कोई सरकार समझौता नहीं कर सकती।

इतने तथ्यों के बावजूद जो लोग भ्रम का वातावरण निर्माण कर रहे हैं अथवा अलगाववादी मांगों का समर्थन कर रहे हैं वे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में सहभागी है। समय आ गया है कि केन्द्र व राज्य सरकार ऐसे

तत्वों से कड़ाई से निपटे। साथ ही इन तथ्यों को देश की जनता तक स्पष्ट रूप से पहुंचाए जाने के गंभीर प्रयास हों ताकि इस विषय पर गत सात दशक से छाया कुहासा छंट सके।

विवाद का मिथक

विश्वमंच पर पाकिस्तान का कश्मीर राग, कश्मीर घाटी में उसके पैसे पर पलने वाले अलगाववादी और तथाकथित मानवाधिकारवादियों के निरंतर भारतविरोधी अभियान ने विभाजन के सात दशक बाद आज यह धारणा बना दी है कि भारत में कश्मीर के विलय पर भारी विवाद है। भ्रमित होकर देश का आम नागरिक इस पर विश्वास करता है।

जम्मू कश्मीर की स्थिति देश के बाकी राज्यों से कुछ अलग है, उसे कुछ विशेष दर्जा दिया गया है। इसके प्रमाण के रूप में कहा जाता है कि वहां का अपना अलग संविधान है। वहां का अलग झंडा है। पूरे देश से अलग वहां की विधानसभा का कार्यकाल छः वर्ष का है।

यह भी कि यदि भारी संख्या में सेना वहां न लगायी जाय तो कश्मीर को भारत में रख पाना नामुमकिन है। साथ ही, भारत और पाकिस्तान का विभाजन धार्मिक आधार पर हुआ था, मुस्लिमों के लिये पाकिस्तान बना, मुस्लिम बहुमत के चलते कश्मीर पाकिस्तान का हिस्सा होना चाहिये था जिसे भारत ने बलप्रयोग कर रोक लिया है। विलय से पूर्व जनता की इच्छा नहीं जानी गयी। वहां के राजा स्वतंत्र रहना चाहते थे और उन्होंने विलय किन्ही शर्तों पर किया था, यह भी कहा जाता है। इसी क्रम में आगे कहा जाता है कि भारत ने संयुक्त राष्ट्र में जनमत संग्रह का वादा किया था जिसे उसने आज तक पूरा नहीं किया है।

वास्तव में विवाद के यह सारे आधार मनगढ़ंत हैं। पाकिस्तान और उससे प्रेरित तत्वों द्वारा विवाद का यह मिथक गढ़ा गया है। भारत के जिम्मेदार लोगों की रहस्यमय और आपराधिक चुप्पी ने अप्रत्यक्ष रूप से इसकी पुष्टि की है। जब यह झूठ का जाल बुना जा रहा था तब सच को सामने लाने की कोशिश नहीं की गयी। अज्ञात कारणों से तब का नेतृत्व मौन रह गया। परिणाम है कि आज मीडिया से लेकर बुद्धिजीवियों के लेखन तक में अलगाववादियों के कुतर्क ही तथ्यों के रूप में उदधृत होते हैं। इनके विरुद्ध भारत का कोई आधिकारिक पक्ष है भी, यह भी कम लोगों की ही जानकारी में है।

तथ्य तो यह है कि जम्मू कश्मीर राज्य को भारतीय संविधान में कोई विशेष दर्जा नहीं दिया गया है। इसके समर्थन में जिस अनुच्छेद 370 का उल्लेख किया जाता है वह अस्थायी उपबंध है न कि विशेष। जहां तक अलग संविधान का सवाल है, संविधान सभा के चुनाव मैसूर राज्य में भी हुए थे और कोचीन–त्रावनकोर में भी। उन्होंने अपने लिये संवैधानिक प्रावधान भी बनाये थे जिन्हें अपेक्षित संशोधनों के साथ संघीय संविधान में ही शामिल कर लिया गया और पृथक संविधान की आवश्यकता ही समाप्त हो गयी।

जम्मू कश्मीर का संविधान भारतीय संविधान की तरह सार्वभौम, संप्रभु नहीं है। वह भारतीय संविधान से शक्तियां प्राप्त करता है। वह जम्मू कश्मीर के भारत का अभिन्न अंग होने और सदैव रहने की पुष्टि करते हुए अपने आपको राज्य के निवासियों को आत्मार्पित करता है। राज्य का अलग झंडा नेहरू–शेख समझौते का परिणाम है तो छः साल की विधानसभा देश में लगे आपातकाल की काली स्मृति।

जहां तक बड़ी संख्या में सेना की तैनाती का सवाल है, जम्मू कश्मीर में सेना की उपस्थिति वहां के नागरिक प्रशासन को

संभालने के लिये नहीं है। जम्मू कश्मीर राज्य की विस्तृत सीमा पाकिस्तान और चीन के साथ लगती है जिनके साथ हमारे सीमा विवाद आज भी हैं और पड़ोसी देशों की ओर से अतिक्रमण के प्रयास निरंतर होते रहते हैं। इसलिये वहां सेना की निरंतर तैनाती आवश्यक है। वैसे भी, सेना की तैनाती सीमा पर ही होगी। यदि जम्मू कश्मीर के साथ सीमा लगती है तो जम्मू कश्मीर में सेना की तैनाती होगी, हमेशा रहेगी। यदि मान लें कि कश्मीर का आतंकवाद और अलगाववाद आज पूरी तरह समाप्त हो जाता है तो क्या वहां से सेना हटाई जा सकती है। आज पंजाब में, राजस्थान में या गुजरात में तो कोई आन्तरिक विवाद नहीं है, फिर भी वहां बड़ी संख्या में सेना व अर्धसैनिक बल तैनात हैं।

इसी प्रकार, भारत का विभाजन साम्प्रदायिक आधार पर होने की मान्यता तकनीकी और संवैधानिक दृष्टि से ठीक नहीं है। यह सत्य है कि विभाजन के समय हुए साम्प्रदायिक दंगों में लाखों लोगों को जान गंवानी पड़ी, यह भी सत्य है कि जिन्ना ने अलग देश पाने के लिये साम्प्रदायिक वैमनस्य का सहारा लिया, लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि अपने जन्म के समय पाकिस्तान भी एक पंथनिरपेक्ष देश बना। लगभग ढ़ाई दशक बाद उसने अपने–आप को इस्लामिक देश घोषित किया। इसलिये यह तर्क कि जम्मू कश्मीर पाकिस्तान का स्वाभाविक हिस्सा है, गलत है।

विभाजन के समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का मत था कि रियासतों का विलय जनता की इच्छा के अनुकूल हो। जिन्ना ने इसका विरोध करते हुए यह निर्णय कराया कि रियासत के राजा ही भारत या पाकिस्तान में से किसी एक में विलय का निर्णय करने के एकमात्र हकदार होंगे। इस प्रावधान का उपयोग करते हुए जम्मू कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने भारत में विलय का निष्पादन किया। तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड

माउंटबेटन ने इसकी पुष्टि की और विलय की संवैधानिक प्रक्रिया पूर्ण हो गयी। इस प्रक्रिया पर सवाल उठाना गलत है और इसे बदल सकना असंभव।

जहां तक विलय में देरी का सवाल है, इसकी कोई निर्धारित समय सीमा नहीं थी। जम्मू कश्मीर के विलय के बाद भी अनेकों राज्यों का भारत में विलय हुआ है जिन पर कभी कोई सवाल नहीं उठाया गया। सभी रियासतों के लिये एक समान आधिकारिक विलयपत्र था जिसे तत्कालीन 'स्टेट डिपार्टमेंट' ने तैयार किया था। इसमें सशर्त विलय का कोई प्रावधान नहीं था। महाराजा हरि सिंह ने भी उसी विलय पत्र पर हस्ताक्षर किये जिस पर देश के सभी राजाओं ने किये थे।

पाकिस्तान के आक्रमण के बाद भारत 1948 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा में नही) में शिकायत लेकर गया। शिकायत थी कि पाकिस्तान ने भारत की सीमा में अपने नागरिकों और सैनिकों को भेज कर राज्य के एक बड़े भू–भाग पर कब्जा कर लिया है। भारत को अपनी भूमि खाली कराने के लिये युद्ध करना पड़ेगा। यदि सुरक्षा परिषद अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर पाकिस्तान को वापस जाने के लिये तैयार कर सकता है तो युद्ध से बचा जा सकता है।

सुरक्षा परिषद ने जब पाकिस्तान को इस संदर्भ में अपना पक्ष रखने के लिये कहा तो उसने समूचे प्रकरण से हाथ झाड़ दिये। उसने जवाब दिया कि जम्मू कश्मीर में घट रही घटनाएं वहां के आन्तरिक विद्रोह का परिणाम हैं और पाकिस्तान का इससे कोई संबंध नहीं है। वहां के राजा ने भारत में विलय कर दिया है किन्तु वहां की जनता इसके समर्थन में नहीं है। इस पर भारत ने सुरक्षा परिषद से एक अध्ययन दल भेजने का निवेदन किया। अध्ययन दल जब वहां पहुंचा तो पाकिस्तान ने स्वीकार किया कि उसकी चार ब्रिगेड कश्मीर में मौजूद हैं।

सुरक्षा परिषद ने भारत से पूछा कि क्या वह राज्य में जनमतसंग्रह के लिये तैयार है। भारत ने इस पर सिद्धांततः सहमति जताते हुए प्रश्न उठाया कि पाकिस्तान के नागरिकों और सैनिकों की बड़ी संख्या और मौजूदा अराजकता के दौर में यह कठिन है। इस पर सुरक्षा परिषद ने फार्मूला सुझाया जिसके अनुसार यह काम तीन चरणों में होना था। पहला युद्ध विराम, दूसरा पाकिस्तान की सेना की वापसी तीसरा जनमत संग्रह। भारत ने पुनः प्रश्न किया कि इस स्थिति में कथित आजाद जम्मू काश्मीर की क्या स्थिति होगी और क्षेत्र की कानून व्यवस्था कौन संभालेगा। सुरक्षा परिषद ने स्पष्टीकरण दिया कि पाकिस्तान के सैनिक और नागरिक वापस जायेंगे, आजाद जम्मू काश्मीर सरकार को भंग किया जायेगा, वहां की सेना का निरस्त्रीकरण होगा, इसके बाद क्षेत्र में व्यवस्था बनाये रखने के लिये आवश्यक संख्या में भारतीय सैन्यबलों की मौजूदगी में जम्मू काश्मीर सरकार द्वारा जनमत संग्रह कराया जायेगा।

भारत ने पुनः दो बातें कहीं, पहली, यदि पाकिस्तान पहले दो बिन्दुओं को लागू नहीं करता है तो जनमत संग्रह का प्रस्ताव उसके लिये बाध्यकारी नहीं होगा। दूसरा, इसके लिये अनुकूल स्थिति की प्रतीक्षा अनंतकाल तक नहीं की जा सकती इसलिये यदि जनमतसंग्रह के अनुकूल परिस्थितियां नहीं बनती हैं तो भारत जनता की राय जानने के अन्य उपाय करेगा।

भारत ने 1951 में राज्य की संविधान सभा का चुनाव कराया जिसमें राज्य की जनता ने उत्साह से भाग लिया। उसके बाद आज एक दर्जन बार आम चुनाव हो चुके हैं जिसमें जनता की सहभागिता निरंतर बढ़ रही है। यह स्थिति सिद्ध करती है कि राज्य की जनता भारतीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया के साथ समरस हो चुकी है।

इन सारे तथ्यों को देश की जनता के सामने तथ्यों और तर्कों के साथ सिलसिलेवार ढ़ंग से रखने में चूक हुई है जिसके कारण आज भ्रम का निर्माण हुआ है। सत्य सामने आयेगा तो कुहासा हटेगा और राष्ट्रीय एकात्मता पुष्ट होगी। सूचना का विस्तार ही इसका एकमात्र हल है।

जम्मू-कश्मीर में घाटे का गणतंत्र

आज पूरा देश निकट भविष्य में बड़े परिवर्तन की बाट जोह रहा है। भारत में इसके लिये पश्चिमी देशों की तरह क्रांति के आह्वान और सड़कों पर गोलीबारी की जरूरत नहीं होती। देश के संविधान के अंतर्गत ही ऐसे परिवर्तन भारत में पहले भी हुए हैं, आगे भी संभव हैं। यदि कोई व्यवस्था के एक अंग से पीड़ित है तो उसे न्याय दिलाने के लिये अन्य संवैधानिक प्रावधान उपलब्ध हैं। पुलिस और प्रशासन से निराश होने के बाद भी मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग, एससी–एसटी आयोग, अल्पसंख्यक आयोग आदि के समक्ष अपनी शिकायत दर्ज करा सकते हैं। इनसे भी समाधान न मिलने पर आप सीधा सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर न्याय प्राप्त कर सकते हैं। गत कुछ वर्षों में अनेक महत्वपूर्ण और निर्णायक फैसले सर्वोच्च न्यायालय ने दिये हैं।

आज गणतंत्र भारत की जीवनशैली बन गया है, लेकिन देश का एक भाग ऐसा भी है जहां के लोग शेष देश के नागरिकों की तुलना में कम भाग्यशाली है और भारत के गणतंत्र बनने के सात दशक बीतने के बाद भी अनेक लोकतांत्रिक सुविधाओं और अधिकारों से वंचित हैं। यह भाग है जम्मू–कश्मीर राज्य, जहां भारत के संविधान की 134 धाराएं आज भी लागू नहीं हैं।

केन्द्र द्वारा गठित मानवाधिकार आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, महिला आयोग, केन्द्रीय सूचना आयोग आदि का क्षेत्राधिकार जम्मू–कश्मीर राज्य में

नहीं है। केन्द्रीय अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य कश्मीर से बनते रहे हैं लेकिन कश्मीर में उसके कार्यक्षेत्र का विस्तार नहीं किया गया है।

केन्द्रीय पंचायती राज कानून (73वां व 74वां संविधान संशोधन विधेयक) वहां लागू नहीं है। 65 वर्षों में केवल 5 बार पंचायतों के चुनाव हुए हैं। केन्द्रीय सहायता पूरे देश में सीधे पंचायतों तक पहुंचाने की व्यवस्था है किन्तु जम्मू–कश्मीर में इसके लिये आवश्यक संरचना ही नहीं बनी है। देश भर में पंचायतों को सशक्त किया जाय, यह पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी का सपना था। उसके आधार पर राज्य विधानसभा ने एक आधा–अधूरा कानून अपने यहां भी बनाया है किन्तु केन्द्र द्वारा पारित विधेयक को अपने यहां लागू करने अथवा उसे नकारने का फैसला वह आज भी नहीं ले सकी है।

अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्ग के लोगों के लिये शिक्षा व रोजगार में आरक्षण लागू नहीं है। अल्पसंख्यक की परिभाषा ही नहीं की गयी है इसलिये अल्पसंख्यकों के लिये दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता और उनके लिये चलने वाली योजनाओं का लाभ भी बहुसंख्यक समुदाय ही ले रहा है। इस विरोधाभास को दूर करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय में याचिका लंबित है और न्यायालय द्वारा सरकार पर अर्थदण्ड लगाये जाने के बावजूद सरकार ने अपना पक्ष दाखिल नहीं किया है।

राज्य में डी–लिमिटेशन एक्ट लागू नहीं है इसलिये वर्ष 2002 में पूरे देश में लोकसभा एवं विधानसभा क्षेत्रों का नये सिरे से परिसीमन हुआ किन्तु जम्मू–कश्मीर में इसे 25 वर्षों के लिये टाल दिया गया। क्षेत्रफल के अनुसार देखें तो 15 हजार वर्ग किमी क्षेत्रफल वाले कश्मीर में विधानसभा की 47 सीटें हैं और 59 हजार वर्ग किमी के लद्दाख में 4 सीटें। इसी प्रकार जम्मू की

जनसंख्या कश्मीर की जनसंख्या से ज्यादा होने पर भी केवल 37 सीटें हैं। विधानसभा में पारित प्रस्ताव के अनुसार 2036 तक यही स्थिति बनी रहेगी।

भारत का संविधान अपने नागरिकों को देश में कहीं भी जाने, बसने और आर्थिक गतिविधि चलाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। लेकिन उसी के एक अनुच्छेद 370 की आड़ में राज्य की विधानसभा ने ऐसी संवैधानिक धोखा–धड़ी की है कि उक्त अनुच्छेद भस्मासुर का वरदान बन गया है। राज्य में शेष भारत के नागरिकों के मौलिक अधिकारों का तो हनन होता ही है, राज्य की जनता को भी पिछड़ा, वंचित और निरक्षर बनाये रखने और लोकतांत्रिक अधिकारों को जनता को न सौंपने का काम भी वहां की सरकारों ने बखूबी किया है।

नेहरू युग में अपनी दोस्ती के दम पर राज्य के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला ने केन्द्र सरकार से वे सुविधाएं हासिल कर लीं जो भारत के गणतांत्रिक मूल्यों का उपहास करती हैं। केन्द्र ने शेख को संविधान के साथ मनमानी करने की छूट तो दी, साथ ही यह प्रयत्न भी किया कि वहां होने वाली संवैधानिक धोखा–धड़ी को देश की नजरों से छिपा कर रखा जाय।

1954 का राष्ट्रपति का आदेश और बाद में इस आदेश में भी किये गये संशोधन इसका जीता–जागता उदाहरण हैं। आज की स्थिति देखें तो प्रारंभ में राज्य की संविधान सभा ने और बाद में संशोधनों द्वारा राज्य की विधानसभा ने अलगाव के बीज बोये। राज्य में भारत के संविधान के अनेक प्रावधानों को ऐसे संशोधनों के साथ लागू किया जिन्होंने उन्हें लागू करने के पीछे की भावना को ही समाप्त कर दिया, वहीं 134 अनुच्छेदों को लागू करने से ही इनकार कर दिया। इसे स्वायत्तता कहें, स्वतंत्रता कहें अथवा स्वच्छंदता कहें।

उदाहरण के लिये, राज्य के संदर्भ में भारत के संविधान की

प्रस्तावना से ही 'समाजवादी', 'पंथनिरपेक्ष' और 'अखण्डता' शब्द निकाल दिये गये। प्रश्न उठता है कि क्या पंथनिरपेक्ष भारत का एक राज्य यह घोषणा करने के लिये स्वतंत्र है। साथ ही, यदि वह पंथनिरपेक्ष नहीं है तो राज्य की नीति क्या है ?यह स्पष्ट करने के लिये धर्मनिरपेक्षता के झंडाबरदारों ने कभी नहीं कहा। इसी प्रकार, जिस राष्ट्रीय अखण्डता के लिये स्वतंत्रता सेनानियों ने बलिदान दिये, जिस अखण्डता की रक्षा के लिये देश के सैनिक शून्य से नीचे के तापमान में अपनी जान जोखिम में डाल कर डटे रहते हैं, उस अखण्डता को प्रस्तावना से निकाल कर राज्य की विधान सभा किसे और क्या संदेश देना चाहती है ?प्रश्न यह भी है कि क्या राज्य की उक्त संविधान सभा और परवर्ती विधानसभाएं यह सब करते समय अपने राज्य की जनता की इच्छाओं का भी आदर करती हैं ?क्या राज्य की जनता के प्रतिनिधित्व करने का उनका दावा झूठा नहीं है ?यदि राज्य की जनता राष्ट्रीय अखण्डता के पक्ष में नहीं है तो करगिल युद्ध के समय करगिल के मुस्लिम भारत की सेना के साथ कंधे से कंधा मिला कर क्यों लड़ते। क्यों लद्दाख स्काउट के 27 बौद्ध जवान अखण्डता की रक्षा के लिये बलिदान देते।

विडंबना यह है कि राज्य की जनता देश की मुख्य धारा के साथ मिल कर आगे बढ़ना चाहती है। विकास के रास्ते पर चलना चाहती है। लेकिन वहां के राजनेता अपने निहित स्वार्थों के लिये जनता की भावनाओं से खेल रहे हैं, देश के संविधान के नीति–निर्देशक तत्वों को नकार रहे हैं। भारतीय संविधान में सोद्देश्य डाली गयी यह सभी विसंगतियां मात्र राज्य की संविधान सभा अथवा विधानसभाओं की इच्छा से लागू नहीं हो जाती हैं। भारत के राष्ट्रपति के हस्ताक्षर से ही यह लागू होती हैं। अर्थात् राज्य के संदर्भ में 'समाजवादी', 'पंथनिरपेक्ष' और 'अखण्डता' शब्द लागू नहीं होंगे, भारत के राष्ट्रपति के आदेश से यह लागू हुआ है।

दुर्भाग्य से केन्द्र की सरकारों ने इसके समाधान की ओर बढ़ने के स्थान पर आंख मूंदना ही बेहतर समझा। ऐसा नहीं है कि यह सब अनजाने में ही हो गया। इसके पीछे छिपे अलगाव को तब भी लोग अनुभव कर रहे थे। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद ने पं. जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखा है जिसमें उन्होंने यह प्रश्न किया है– "मुझे इसमें संदेह है कि भारत का संविधान कार्यकारी सरकार को संविधान संशोधन करने (बिना सदन में जाये) का अधिकार देता है।" इसके बावजूद भी किन परिस्थितियों और विवशताओं में यह परिवर्तन किये गये और क्या कभी इसके कारण होने वाले परिणामों पर चर्चा होगी, इस पर देश के राजनेताओं और बुद्धिजीवियों के बीच सन्नाटा पसरा है। स्वतंत्रता के इस सातवें दशक में इस पर एक राष्ट्रीय बहस हो, यह समय की मांग है।

देश के नीतिनियंताओं को स्मरण रहे कि जम्मू–कश्मीर राज्य के संविधान में न सही, भारत के उस संविधान में पंथनिरपेक्षता और अखण्डता शब्द आज भी विद्यमान हैं जिसकी शपथ लेकर वे अपने पद का निर्वहन करते हैं। यह उन्हें स्मरण दिलाता है कि पूरे देश में इस संविधान का शासन और देश के प्रत्येक नागरिक तक उसका लाभ पहुंचाना, यह उनकी जवाबदेही है। इस परिधि में भारत के उस क्षेत्र के भी नागरिक आते हैं जिस पर शत्रु देशों ने कब्जा कर लिया है। दशकों से भारत ने उनकी सुध–बुध नहीं ली है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत की उनके प्रति जिम्मेदारी कम हो गयी है। भारत में विलय के पश्चात वे भी देश के किसी भी अन्य नागरिक की भांति ही भारतीय हैं और उनकी मुक्ति के साथ–साथ भारतीय संविधान के संरक्षण में उन्हें विकास के अवसर प्रदान कर हम अपने गणतंत्र के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ सकते हैं।

अनुच्छेद 370 का दुरुपयोग

गत सात दशकों की राजनीति ने अनुच्छेद 370 को विमर्श की जगह विवाद का मुद्दा बना दिया है। परिणामस्वरूप अनुच्छेद 370 की आड़ में इन वर्षों में क्या–क्या हुआ और उसका वहां के स्थानीय निवासियों के संदर्भ में क्या प्रभाव हुआ, इसका अध्ययन और विमर्श होने के स्थान पर राजनैतिक वर्ग दो हिस्सों में बंट गया। इसमें एक वर्ग ने इस अनुच्छेद को हटाने में ही सारी समस्याओं का समाधान माना वहीं दूसरे वर्ग ने इसे न हटने देने के लिये कमर कस ली। इस काल्पनिक संघर्ष में उलझा राज्य का निवासी वर्ग अपने ही प्रश्नों का समाधान न पा सका।

जम्मू–कश्मीर भारतीय संघ का वैसे ही अभिन्न अंग है जैसे कोई भी अन्य राज्य। जम्मू–कश्मीर का प्रत्येक निवासी भारतीय नागरिक है और उसे वे सभी अधिकार हासिल हैं जो भारत के किसी भी नागरिक को हैं। संविधान का कोई भी प्रावधान उसे मौलिक अधिकार प्राप्त करने से रोक नहीं सकता। अगर अनुच्छेद 370 की आड़ में ऐसा हो रहा है तो उस पर पुनर्विचार की जरूरत है।

तकनीकी तौर पर देखा जाय तो भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 का प्रवेश भारतीय संविधान को तात्कालिक परिस्थितियों में जम्मू कश्मीर राज्य में लागू करने के लिये किया गया था। इस दृष्टि से देखें तो यह एक संवैधानिक प्रावधान है जिसका सीमित और सुनिश्चित कार्य है। अपने आप में यह न अच्छा है

और न बुरा। इसलिये इसके गुण–दोषों पर विवाद की गुंजाइश भी नहीं है। इसका मूल्यांकन इस आधार पर किया जाना चाहिये कि इसका उपयोग क्या इसके मूल उद्देश्य से इतर किन्हीं ऐसे कार्यों के लिये तो नहीं किया गया जो इससे अभीष्ठ नहीं था। इस पैमाने पर यह साबित होता है कि उद्देश्य से अलग इस अनुच्छेद का बार–बार दुरुपयोग किया गया है और निजी राजनैतिक हितों को साधने के लिये यह इस्तेमाल हुआ है। अनुच्छेद 370 नहीं बल्कि इसका यह दुरुपयोग ही है जिसने जम्मू कश्मीर में अलगाववाद को पनपने में मदद की है और राज्य को हिंसा और अराजकता की ओर धकेला है।

भारत का संविधान अपने मूल स्वरूप में पंथनिरपेक्ष है। उसके किसी भी अनुच्छेद की व्याख्या जाति–पंथ–क्षेत्र के संदर्भ में किया जाना अवांछनीय है। दुर्भाग्य से अनुच्छेद 370 को एक विशिष्ट क्षेत्र और मजहब के साथ जोड़ कर देखने की राजनैतिक प्रवृत्ति ने स्थिति को जटिल बनाया है। इसके चलते अनुच्छेद 370 की विकृत व्याख्या की गयी। अनेक ऐसे प्रावधान राज्य में लागू किये गये जो भारतीय संविधान की भावना से मेल नहीं खाते। दूसरी तरफ लोकहित के अनेक कानून यहां लागू नहीं हैं जिसके कारण राज्य के निवासी उन प्रावधानों से वंचित हैं जिनका लाभ देश के सभी नागरिक उठा रहे हैं।

अनेक विशेषज्ञ यह दावा करते हैं कि जम्मू–कश्मीर के साथ भारत का रिश्ता अनुच्छेद 370 से निर्धारित होता है। सवाल यह उठता है कि बाकी राज्यों के साथ रिश्ते के निर्धारण के लिये कौन सा अनुच्छेद है? जाहिर है ऐसे कोई अनुच्छेद भारत के संविधान में नहीं जोड़े गये जो एक–एक राज्य के साथ संबंधों की परिभाषा करें। भारतीय संविधान की प्रथम अनुसूची में भारतीय संघ में शामिल सभी राज्यों की सूची है जिसमें जम्मू–कश्मीर 15वें स्थान पर है। इसके बाद भी कोई और

अनुच्छेद राज्य के साथ संघ के रिश्तों का निर्धारण करे, यह बात ही बेमानी है।

राजनैतिक नारेबाजी के उस्ताद भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 में किये गये तात्कालिक प्रावधानों को विशेष दर्जा बताते हैं। जबकि उस कानून में कहीं भी यह नहीं लिखा है। अनुच्छेद अपने–आप को अस्थायी बताता है। इसे कैसे खत्म किया जा सकता है, यह भी बताता है। इसे बदलने अथवा समाप्त करने की सिफारिश राज्य की संविधान सभा को करनी थी लेकिन संबंधित आदेश भारत के राष्ट्रपति द्वारा ही जारी किया जाना था। संविधान सभा आज नहीं है लेकिन राष्ट्रपति मौजूद हैं जो अपने अधिकार का जब चाहें उपयोग कर सकते हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि अनुच्छेद 370 हटने से उसका भारतीय संघ के साथ संबंध समाप्त हो जायेगा वह सरासर झूठ बोलते हैं। भारत के संविधान का अनुच्छेद 1, जो भारत की भौगोलिक परिसीमाओं का वर्णन करता है, जम्मू काश्मीर के भारत का अंग होने की घोषणा करता है। यह अनुच्छेद जम्मू काश्मीर सहित देश के सभी राज्यों पर स्वतः लागू होता है। इसे न तो 370 का सहारा चाहिये और न ही किसी और संवैधानिक प्रावधान का।

अनुच्छेद 370 को भारत संघ और जम्मू काश्मीर के बीच सेतु बताने वालों को पहले जम्मू काश्मीर के संविधान का अनुच्छेद 3 पढ़ लेना चाहिये जो घोषणा करता है कि जम्मू काश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग है और सदैव रहेगा। इसका अनुच्छेद 147 भी साथ में पढ़ना जरूरी है जो बताता है कि अनुच्छेद 3 और 147 को बदलने संबंधी कोई भी प्रस्ताव राज्य विधानसभा में पारित तो दूर की बात, विचार के लिये प्रस्तुत भी नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 एक अस्थायी उपबंध के

रूप में जोड़ा गया। इसे जोड़ने की जरूरत क्यों अनुभव की गयी, यह जानने के लिये संविधान सभा की कार्यवाही को देखना जरूरी है। गोपालस्वामी आयंगर ने जब यह अनुच्छेद प्रस्तुत किया तो अकेले हसरत मोहानी ने इसकी जरूरत पर सवाल उठाया। जवाब देते हुए आयंगर ने कहा कि राज्य में युद्ध जैसी स्थिति है, कुछ हिस्सा आक्रमणकारियों के कब्जे में है, संयुक्त राष्ट्र संघ में हम उलझे हुए हैं और वहां फैसला होना बाकी है, इसलिये यह अस्थायी प्रावधान किया जा रहा है। जम्मू–कश्मीर के प्रतिनिधि के रूप में वहां नेशनल कांफ्रेंस के सदस्य मौजूद थे जो इस पर खामोश रहे। शेष किसी सदस्य ने भी इस पर चर्चा की जरूरत नहीं समझी क्योंकि प्रावधान अस्थायी था और उसके समाप्त होने की प्रक्रिया भी अनुच्छेद में ही जोड़ दी गयी थी।

आज यदि किसी अनुच्छेद का मूल्यांकन करना हो तो दो बातों को आधार बनाया जाना चाहिये। पहला, जब वह अनुच्छेद संविधान में जोड़ा गया तो संविधान निर्माताओं की मंशा क्या थी। दूसरा, उक्त प्रावधान क्या अपने उद्देश्य में सफल हो सका। संविधान निर्माताओं की मंशा तो इस से ही जाहिर है कि उन्होंने उसे अस्थायी की श्रेणी में रखा। इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता तत्कालीन राष्ट्रपति को लागू होने के कुछ समय बाद ही अनुभव होने लगी। स्वयं विधि मंत्री डॉ अम्बेडकर ने नेहरू मंत्रिमंडल से इस्तीफा देते समय जो कारण गिनाये, नेहरू की जम्मू–कश्मीर नीति से असहमति उनमें से एक था।

जहां तक उद्देश्य में सफलता का सवाल है, अनुच्छेद 370 के कारण राज्य की शेष देश से दूरी बढ़ने, विकास के बाधित होने, विस्थापितों और शरणार्थियों के संविधानप्रदत्त मौलिक अधिकारों से वंचित रहने जैसे बड़े सवाल सामने हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछडे वर्ग, महिलाओं, तथा

अल्पसंख्यकों के लिये भारतीय संविधान में किये गये संरक्षणात्मक प्रावधान तथा आरक्षण की सुविधा से भी राज्य की बड़ी जनसंख्या वंचित है।

देश के 134 कानून जम्मू–कश्मीर में लागू नहीं हैं। यदि वे शेष देश के नागरिकों के हितों पर चोट नहीं करते तो किसी राज्य विशेष के लिये कैसे नुकसानदेह हो सकते हैं। लेकिन अनुच्छेद 370 पर क्षेत्रीय और मजहबी पहचान का लबादा डाल कर अलगाव की राजनीति को धार दी जाती रही है।

अनुच्छेद 370 के मूल्यांकन के लिये जरूरी है कि उसे छः दशक पुरानी नेहरू–शेख, हिन्दू–मुस्लिम, भाजपा–कांग्रेस और पीडीपी–नेशनल कांफ्रेंस की परंपरागत गुत्थियों से बाहर निकाला जाय। अनुच्छेद 370 को 'हटाओ' और 'नहीं हटने देंगे' की नारेबाजी के बीच युवाओं की आकांक्षाएं, विकास की उम्मीद और राष्ट्रीय एकता के प्रयास, सभी दम तोड़ रहे हैं।

बिना किसी संदर्भ के जब पूर्व मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला "370 हटाने के लिये हमारी लाशों पर से गुजरना होगा" जैसा बयान देते हैं तो वह जम्मू–कश्मीर की अवाम को चार दशक पीछे ले जाने की कोशिश कर रहे होते हैं। उमर अब्दुल्ला तीसरी पीढ़ी के नेता हैं और उनसे उम्मीद की जाती है कि वे आधुनिक होंगे। लेकिन वह अतीत में लौटना चाहते हैं। इंदिरा–शेख समझौते के बाद से क्षेत्रीय स्वायत्तता का सवाल धीरे–धीरे हल हो रहा है। एकीकरण का रास्ता खुला है। लेकिन उमर का बयान इस प्रक्रिया पर चोट करता है।

देश में ज्यादातर लोगों को भ्रम है कि जम्मू काश्मीर में राज्य के लाखों निवासियों को जो वहां जाकर बसने, मतदान करने, संपत्ति खरीदने आदि पर जो प्रतिबंध है वह अनुच्छेद 370 के चलते हैं। इसी भ्रम ने एक वर्ग में यह धारणा भी उत्पन्न की

अनुच्छेद 370 हटा देने से यह भारतीय नागरिकों के साथ दोहरा व्यवहार समाप्त हो जायेगा। यह दोनों ही धारणाएं गलत है। अनुच्छेद 370 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

संविधान सभा की चर्चा में स्पष्ट है कि अनुच्छेद 370 को भारतीय संविधान में जोड़े जाने का उद्देश्य भारतीय संविधान के आवश्यक प्रावधानों को राज्य में लागू करना था न कि उन्हें रोकना। इसकी जरूरत इसलिये पड़ी क्योंकि राज्य पर पाकिस्तान का आक्रमण हो चुका था, युद्ध जैसी परिस्थिति थी, भारत सुरक्षा परिषद के चक्र में फंस गया था और राज्य संविधान सभा के चुनाव की तुरंत कोई संभावना नजर नहीं आ रही थी। संविधान निर्माताओं के सामने प्रश्न था कि क्या पूरे देश में संविधान लागू हो जायेगा और जम्मू कश्मीर इस गणतांत्रिक व्यवस्था में शामिल नहीं होगा।

यह प्रश्न संभवतः केन्द्रीय राजनेताओं से ज्यादा राज्य के राजनेताओं के लिये महत्वपूर्ण रहा होगा क्योंकि शेख अब्दुल्ला की लड़ाई का मकसद ही राज्य से सामंतवाद खत्म करके लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करना था। इसके लिये ही उन्होंने कांग्रेस से हाथ मिलाया था और लोकतंत्र के प्रति उनके आग्रह के कारण ही पं. नेहरू शेख के लिये अतिरिक्त संवेदनशील थे।

केन्द्रीय संविधान सभा जब अनुच्छेद 370 पर विचार कर रही थी तब गोपालस्वामी अयंगर ने इसे साफ तौर पर अस्थायी कह कर प्रस्तुत किया। 17 अक्तूबर 1949 को कश्मीर मामलों को देख रहे मंत्री गोपालस्वामी अयंगार ने भारत की संविधान सभा में अनुच्छेद–306(ए) (वर्तमान अनुच्छेद–370) को प्रस्तुत किया। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा संविधान का जो मूल पाठ (ड्राफ्ट) प्रस्तुत किया गया था, उसमें यह अनुच्छेद–306(ए) सम्मिलित नहीं था।

संविधान में 21वें अध्याय में यह अनुच्छेद अस्थायी और संक्रमणकालीन उपबंध शीर्षक के अंतर्गत सम्मिलित किया गया। वस्तुतः इसे अतिरिक्त विधायी प्रक्रिया (एडीशनल लेजिस्लेटिव मैकेनिज्म) के रूप में जोड़ा गया था ताकि राज्य के अपने संविधान निर्माण तक प्रतीक्षा न करते हुए आवश्यक वैधानिक प्रावधानों को लागू किया जा सके। इसके अनुसार भारतीय संविधान की केन्द्रीय एवं समवर्ती सूची में से भारतीय संसद –

1. विदेश, संचार, सुरक्षा (आंतरिक सुरक्षा सहित) पर जम्मू–कश्मीर सरकार से सलाह कर कानून बना सकती है।

2. केन्द्रीय एवं समवर्ती सूची के शेष सब विषयों पर संसद द्वारा पारित कानून जम्मू–कश्मीर सरकार की सहमति से लागू किये जा सकेंगे।

संविधान सभा में प्रस्ताव आने पर संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) से संविधान सभा के प्रतिनिधि मौलाना हसरत मोहानी ने प्रश्न पूछा– यह भेदभाव क्यों? गोपालस्वामी अयंगार ने उतर दिया– कश्मीर की कुछ विशिष्ट परिस्थिति है, इसलिये अंतरिम रूप से कुछ विशेष व्यवस्थाओं की आज आवश्यकता है। उन्होंने स्पष्ट किया–

1. जम्मू–कश्मीर राज्य के अंतर्गत कुछ युद्ध चल रहा है। युद्ध विराम लागू है, पर अभी सामान्य स्थिति नहीं है।

2. राज्य का कुछ हिस्सा आक्रमणकारियों के कब्जे में है।

3. संयुक्त राष्ट्र संघ में हम अभी उलझे हुये हैं।

4. भारत सरकार ने जम्मू–कश्मीर के लोगों को वादा किया है कि सामान्य स्थिति होने के पश्चात जनता की इच्छाओं के

अनुसार अंतिम निर्णय किया जायेगा।

5. प्रजासभा का अब अस्तित्व नहीं है। हमने स्वीकार किया है कि राज्य की अलग से संविधान सभा द्वारा केन्द्रीय संविधान का दायरा एवं राज्य के संविधान का निर्णय किया जायेगा।

6. इन विशेष परिस्थितियों के कारण अस्थायी तौर पर इस अनुच्छेद–370 को संविधान में शामिल करने की आवश्यकता है।

अनुच्छेद 370 भारतीय संविधान का अकेला उपबंध है जिसके समाप्त करने की व्यवस्था भी उक्त अनुच्छेद में दी गयी है। इसके अनुसार – (3) इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में नहीं रहेगा या ऐसे अपवादों और उपांतरणों सहित ही और ऐसी तारीख से, प्रवर्तन में रहेगा जो वह विनिर्दिष्ट करे,

परंतु राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना निकाले जाने से पहले खण्ड (2) में निर्दिष्ट उस राज्य की संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।

इस अनुच्छेद को निरस्त करने की प्रक्रिया देकर संविधान निर्माताओं ने इसकी पुष्टि ही की है कि उनकी दृष्टि में सर्वथा अस्थायी उपबंध था जिसे समाप्त होना ही था। राज्य संविधान सभा की सिफारिश की शर्त जोड़ने का आशय केवल इतना ही है कि राष्ट्रपति द्वारा अथवा उसके माध्यम से केन्द्र द्वारा किसी प्रकार की मनमानी पर रोक लयागी जा सके। लेकिन इससे यह कहीं भी नहीं प्रकट होता कि अनुच्छेद 370 को स्थायी किये जाने की किसी संभावना पर भी उन्होंने सोचा था।

यह तथ्य है कि राज्य की संविधान सभा ने अनुच्छेद 370 के

निरसन की सिफारिश किये बिना स्वयं के विलय की घोषणा कर दी। संविधान सभा को केवल सिफारिश करनी थी। निर्णय राष्ट्रपति को लेना था जो आज भी मौजूद है। ऐसे में क्या संविधान सभा की इस चूक का परिणाम भुगतने के लिये आने वाली पीढ़ियां अभिशप्त हैं।

जम्मू–कश्मीर के अलगाव और पीड़ा को संबोधित करना है तो राजनीति को परे कर ईमानदार पहल जरूरी है। राज्य को यदि विकास के रास्ते पर आगे बढ़ना है तो उसके लोकतांत्रिक उपायों से मुंह मोड़ना असंभव है। जनता के हाथों पंचायती राज सौंपना होगा, केन्द्रीय मानवाधिकार आयोग, केन्द्रीय अल्पसंख्यक आयोग, केन्द्रीय महिला आयोग, केन्द्रीय अनुसूचित जाति आयोग, केन्द्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग तथा लोकसभा–विधानसभा हेतु परिसीमन आयोग आदि के लिये दरवाजे खोलने होंगे ताकि कोई भी नागरिक अपने अधिकारों के लिये सीधे इन संस्थाओं तक पहुंच सके।

विभेदकारी अनुच्छेद 35क

अनुच्छेद 370 का विरोध सामान्यतः इसलिये होता है कि उसके कारण शेष भारत के नागरिक वहां जा कर बस नहीं सकते, संपत्ति नहीं खरीद सकते, मताधिकार नहीं प्राप्त कर सकते। किन्तु तकनीकी रूप से यह ठीक नहीं है। इसके लिये अनुच्छेद 35ए जिम्मेदार है जिसे अनुच्छेद 370 के प्रावधान का उपयोग करते हुए लागू किया गया है।

14 मई 1954 को भारत के महामहिम राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया जिसका शीर्षक था – संविधान (जम्मू कश्मीर को लागू होना) आदेश, 1954, संवैधानिक आदेश क्र. 48 ।

इस आदेश के माध्यम से राष्ट्रपति महोदय ने भारतीय संविधान के अधिकांश अनुच्छेद संविधान के अनुच्छेद 370 के खण्ड 1 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार की सहमति से उनमें आवश्यक संशोधनों के साथ लागू किये। किन्तु इसी आदेश में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 35 के पश्चात एक नया अनुच्छेद 35क जोड़ने का भी निर्देश दिया।

भारतीय संविधान का यह अनुच्छेद राज्य विधानसभा को अपने स्थायी नागरिकों की परिभाषा करने का अधिकार देता है। साथ ही, वह राज्य के स्थायी निवासियों को राज्य सरकार के अधीन नियोजन, राज्य में अचल संपत्ति के अर्जन, राज्य में बस जाने अथवा राज्य सरकार की सहायता देने तथा ऐसे लोग जो राज्य के स्थायी निवासी नहीं हैं, के अधिकारों को सीमित

अथवा प्रतिबंधित करने का अधिकार देता है। यह अनुच्छेद राज्य को यह आश्वासन भी देता है कि इसके अंतर्गत निश्चित किये प्रावधानों को उस स्थिति में भी शून्य नहीं किया जा सकेगा यदि वे भारत के अन्य नागरिकों को प्रदत्त किन्ही अधिकारों से असंगत हैं या उनको छीनते या उनको न्यून करते हैं।

इस प्रावधान का प्रयोग करते हुए राज्य ने अपने नागरिकों को स्वतंत्रता से पहले से चली आ रही श्रेणी 1 व श्रेणी 2 को बनाये रखा और उन्हें ही अपना स्थायी नागरिक माना जो यह कानून लागू होने से दस वर्ष पूर्व (अर्थात 1944 से पूर्व) राज्य में अचल संपत्तिधारक है।

परिणामस्वरूप, 1947 में विभाजन के पश्चात पाकिस्तान से विस्थापित होकर राज्य में आने वाले अथवा शेष भारत के किसी भी भाग से आकर वहां रहने के इच्छुक लोगों के वहां के स्थायी निवासी बनने की संभावना को नकार दिया गया। इसके विपरीत, विभाजन के समय पाकिस्तान चले जाने वाले लोग कभी भी वापस आकर अपनी संपत्ति और अधिकार वापस प्राप्त कर सकते हैं।

स्पष्ट है कि यह अनुच्छेद राज्य के निवासियों को दो श्रेणियों में बांटता है। एक भारत के वे नागरिक जो राज्य के स्थायी निवासी के प्रमाणपत्र धारक हैं और दूसरे वे भारतीय नागरिक, जो राज्य के स्थायी निवासी नहीं हैं। स्पष्टतः यह संविधान के मूल ढ़ांचे के विरुद्ध है और भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकारों को सीमित करता है।

अनुच्छेद 370 के पाठ में भारतीय संविधान के प्रावधानों को राज्य की आवश्यकता के अनुसार संशोधित करने का अधिकार तो दिया गया है किन्तु यह सारे संशोधन राज्य में लागू होने वाले प्रावधानों तक ही सीमित हैं। अनुच्छेद 35क इस दृष्टि से

अपवाद है कि यह भारतीय संविधान में एक नया अनुच्छेद जोड़ देने के निर्देश देता है। देश की संसद को बिना विश्वास में लिये भारतीय संविधान के साथ छेड़–छाड़ का यह एकमात्र और अनोखा उदाहरण है।

अनुच्छेद 35क के दुष्परिणाम

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–35क के अंतर्गत राज्य की विधानसभा को राज्य के स्थायी निवासी की परिभाषा निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। अपने इस अधिकार का प्रयोग करते हुए राज्य विधानसभा ने निश्चित किया कि राज्य के संविधान के लागू होने की तिथि (1954) से 10 वर्ष पूर्व से राज्य में रह रहे नागरिक ही राज्य के स्थायी निवासी माने जायेंगे।

संविधान सभा ने यह भी निश्चित किया कि जम्मू–कश्मीर के जिन निवासियों (जो 1944 से पूर्व से यहां रहते थे) के पास स्थायी निवासी प्रमाण पत्र होगा, वे ही राज्य द्वारा प्रदत्त सभी मूल अधिकारों का उपयोग कर सकेंगे। इस कारण से शेष भारत के निवासी जम्मू–कश्मीर में न तो सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकते हैं और न ही जमीन खरीद सकते हैं। उनको राज्य के अंतर्गत वोट देने का अधिकार भी नहीं है। उनके बच्चे छात्रवृत्तियां और व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों में प्रवेश भी नहीं ले सकते। इस संवैधानिक विभेद के प्रत्यक्ष पीड़ित है –

1947 में जम्मू–कश्मीर में पश्चिम पाकिस्तान से आये हिन्दू शरणार्थी (आज लगभग दो लाख) अभी भी अपने मूल अधिकारों से वंचित हैं, जबकि तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला ने ही खाली पड़ी सीमाओं की रक्षा के लिए यहां उनको बसाया था। इनमें अधिकतर अनुसूचित और पिछड़ी जातियों के हैं। इनके बच्चों को न छात्रवृति मिलती है और न

ही व्यावसायिक पाठयक्रमों में प्रवेश का अधिकार है। सरकारी नौकरी, संपत्ति क्रय–विक्रय तथा स्थानीय निकाय चुनाव में मतदान का भी अधिकार नहीं है। अपने ही देश में वे आज भी शरणार्थी कहलाते हैं।

शेष भारत से आकर यहां रहने वाले व कार्य करने वाले प्रशासनिक, पुलिस सेवा के अधिकारी भी इन अधिकारों से वंचित है। 30–35 वर्ष इस राज्य में सेवा करने के बावजूद भी इन्हें अपने बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु राज्य से बाहर भेजना पड़ता है और सेवानिवृत्ति के बाद वे यहां एक मकान भी बनाकर नहीं रह सकते।

1956 में जम्मू–कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने जम्मू शहर में सफाई व्यवस्था में सहयोग करने के लिये अमृतसर (पंजाब) से 70 वाल्मीकि परिवारों को निमंत्रित किया। आज तक उन्हें राज्य के अन्य नागरिकों के समान अधिकार नहीं मिले। उनके बच्चे चाहे कितनी भी शिक्षा प्राप्त कर लें, जम्मू–कश्मीर के संविधान के अनुसार केवल सफाई कर्मचारी की नौकरी के लिये ही पात्र हैं। आज उनके लगभग 600 परिवार हैं लेकिन उनकी आवासीय कॉलोनी को भी अभी तक नियमित नहीं किया गया है।

जम्मू कश्मीर की सेना में अपनी सेवा देने वाले गोरखा आज केवल चौकीदारी ही कर सकते हैं। उनकी भी नयी पीढ़ी वाल्मीकि समाज के अनुसार ही मूल अधिकारों से वंचित है।

राज्य की महिलाओं की स्थायी नागरिकता कुछ समय पहले तक उनके विवाह तक ही अनुमन्य थी। राज्य के बाहर अथवा राज्य के भीतर भी गैर स्थायी निवासी के साथ विवाह होने पर उनका स्थायी निवासी का दर्जा और परिणामस्वरूप सभी मूल अधिकार छिन जाते थे। वर्ष 2002 में सुशीला साहनी मामले में आये जम्मू कश्मीर उच्च न्यायालय के निर्णय से वहां की

महिलाओं को स्थायी निवासियों को मिलने वाली सुविधाएं बहाल हो गयीं किन्तु उनके द्वारा अर्जित सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करने का अधिकार उनकी संतानों को आज भी नहीं है।

इससे पूर्व भी बचनलाल कलगोत्रा बनाम जम्मू कश्मीर राज्य मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय टिप्पणी कर चुका है कि – हम नहीं जानते कि हम पश्चिमी पाकिस्तान के शरणार्थियों और उन जैसे लोगों को क्या राहत दे सकते हैं। यही कहा जा सकता है कि याची और उन जैसे तमाम लोगों की स्थिति विधि–विरुद्ध है। इसके बाद भी यह स्थिति आज भी जारी है।

न्याय की दहलीज पर

अनुच्छेद 35क को लेकर देश में एक तीखी बहस उठ खड़ी हुई है। सर्वोच्च न्यायालय में इस अनुच्छेद के प्रवधानों को लेकर इसकी वैधानिकता की सुनवाई कर रही पीठ ने मामले को तीन सदस्यीय पीठ के पास भेज दिया। यह पीठ विचार करेगी कि क्या यह वाद संविधान पीठ को सौंपा जा सकता है। तीन सदस्यीय पीठ के संतुष्ट होने पर पांच अथवा उससे अधिक न्यायाधीशों की संविधान पीठ के गठन का मार्ग खुल जायेगा।

मामला सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित है और यह समय ही बतायेगा कि फैसला क्या आता है। किन्तु जम्मू कश्मीर की राजनीति में अनुच्छेद 35क की संवैधानिक समीक्षा की संभावना भर से ही तूफान उठ खड़ा हुआ है। कुछ दिन पहले सर्वोच्च न्यायालय द्वारा याचिका स्वीकार किये जाने का समाचार पाकर राज्य की मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती ने तीखी प्रतिक्रिया जाहिर की थी। उन्होंने नई दिल्ली में एक कार्यक्रम में कहा था, 'कौन यह कर रहा है। क्यों वे ऐसा कर रहे हैं, अनुच्छेद 35–ए को चुनौती दे रहे हैं। मुझे आपको बताने दें कि मेरी पार्टी और अन्य पार्टियां जो तमाम जोखिमों के बावजूद जम्मू–कश्मीर में राष्ट्र ध्वज हाथों में रखती हैं, मुझे यह कहने में तनिक भी संदेह नहीं है कि अगर इसमें कोई बदलाव किया गया तो कोई भी इस राष्ट्र ध्वज को थामने वाला नहीं होगा'।

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर संबोधित करते हुए मुफ्ती ने कहा कि मुझे देश के संस्थानों व न्यायपालिका में पूरा विश्र्वास है, यह संस्थान राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, पहले की तरह अब भी और आगे भी जम्मू कश्मीर की जनता को न्याय प्रदान करते रहेंगे। उन्होंने कहा कि जम्मू कश्मीर को विलय के मौके पर देश की संवैधानिक संरचना के भीतर एक विशेष दर्जा दिया गया और जब कभी इस दर्जे को हटाने का मामला न्यायपालिका के समक्ष आया तो उसने विशेष स्थिति को बरकरार रखा।

लेकिन अगले ही वाक्य में उन्होंने जोड़ा कि राज्य का संपूर्ण राजनीतिक वर्ग चाहे वह किसी भी विचारधारा से जुड़ा हो, राज्य की विशेष स्थिति की रक्षा व संरक्षण के लिए एकजुट है। जब भी राज्य की पहचान का संकट होता है, हम सभी लोग एक बंद मुठ्ठी की तरह एकजुट हो जाते हैं। हाल में विभिन्न राजनीतिक दलों से मेरी मुलाकात हुई और मुझे इस बात की खुशी है कि धारा 35क के मुददे पर सभी एकसाथ खड़े हैं। महबूबा ने यह भी कहा कि हमारे मुल्क में भी कुछ लोग हैं जो चाहते हैं कि हमें 1947 की स्थिति में धकेला जाए और यह वही लोग हैं जो कभी इस बात पर तो कभी उस बात पर बार–बार सर्वोच्च न्यायालय में पहुंच जाते हैं।

जम्मू–कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री फारुक अब्दुल्ला ने भी अनुच्छेद 35क पर सरकार को चेतावनी दी है। उन्होंने कहा कि अगर धारा 35क के साथ किसी भी प्रकार की छेड़खानी हुई तो फिर यहां लोग अमरनाथ भूमि विवाद आंदोलन को भूल जाएंगे, उससे भी बड़ा जनांदोलन पूरी रियासत में होगा। केंद्र को नहीं मालूम कि धारा 35क से खिलवाड़ का मतलब जम्मू–कश्मीर में आग लगाना है। विभिन्न राजनीतिक दलों

(गैरसत्ताधारी दलों) के नेताओं व प्रतिनिधियों के साथ एक बैठक के बाद पत्रकारों से बातचीत में फारुक अब्दुल्ला ने कहा कि केंद्र सरकार बड़े ही सुनियोजित तरीके से धारा 35ए को भंग करने में लगी हुई है। राज्य में सत्तासीन पीडीपी–भाजपा गठबंधन सरकार इसमें पूरा सहयोग कर रही है। अब्दुल्ला ने कहा कि भाजपा और आरएसएस का एक ही एजेंडा है, धारा 370 व जम्मू–कश्मीर की स्वायत्तता को किसी तरह खत्म करना। इसी एजेंडे के तहत धारा 35ए को समाप्त किया जा रहा है।

नेशनल कांफ्रेंस के कार्यवाहक प्रधान और राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने सत्ताधारी भाजपा पर अनुच्छेद 35क के मुद्दे पर जम्मू व कश्मीर को बांटने की साजिश करने का आरोप लगाते हुए कहा कि विशेषाधिकार खत्म होना राज्य के लिए घातक होगा। भाजपा पर अनुच्छेद 370 खत्म करने के चुनावी एजेंडे को 35क की आड़ में पूरा करने की साजिश रचने का आरोप लगाते हुए उमर ने चेतावनी दी कि विशेष दर्जे से छेड़छाड़ की स्थिति में पहले जैसे हालात हो जाएंगे। हम किसी कीमत पर ऐसा नहीं होने देंगे।

इससे पूर्व 11 अक्टूबर 2015 को जम्मू–कश्मीर हाईकोर्ट द्वारा दिये गये एक फैसले में कहा गया कि जम्मू–कश्मीर को विशेष दर्जा देने वाला संविधान का अनुच्छेद 370 स्थायी है, इसलिए इसमें किसी संशोधन या इसे हटाने की गुंजाइश नहीं बनती। इसके साथ ही अदालत ने यह भी कहा कि अनुच्छेद 35क राज्य में लागू कानूनों को सुरक्षा प्रदान करता है।

हाईकोर्ट ने फैसले में कहा कि जम्मू–कश्मीर भारत के अन्य राज्यों की तरह नहीं है। इसे सीमित संप्रभुता प्राप्त है, इसलिए

इसे विशेष राज्य का दर्जा दिया गया है। यह अनुच्छेद राज्य को विशेष दर्जा सुनिश्चित करता है।

जम्मू एवं कश्मीर को कथित विशेष अधिकार देने वाले अनुच्छेद 35क को बचाने के लिए अलगाववादियों की ओर से बंद का आह्वान किया गया। बंद के कारण कश्मीर घाटी के कुछ हिस्सों में सीमित असर दिखा। सैयद अली शाह गिलानी, मीर वाइज उमर फारूक और मोहम्मद यासीन मलिक की अध्यक्षता वाले संयुक्त प्रतिरोधी नेतृत्व (जेआरएफ) द्वारा आहूत बंद के बावजूद श्रीनगर प्रशासन ने शहर में कोई प्रतिबंध नहीं लगाया। यह मजेदार है कि जो अलगाववादी भारतीय संविधान को ही नहीं मानते वे उसके एक अनुच्छेद में होने वाले संभावित परिवर्तन से चिंतित हैं।

अनुच्छेद 370 और 35क को लेकर घाटी में जो हंगामा मचा हुआ है वह उन कारणों से नहीं है जो प्रत्यक्ष रूप से बताये जा रहे हैं। यह भय इसलिये भी नहीं है कि 35क का क्या होगा। आने वाली पीढ़ियों के भविष्य, उनकी नौकरियों और पढ़ाई की जो बात की जा रही है वह भी छलावा मात्र है। अगर इसकी इतनी चिंता होती तो रोज–रोज के बंद और नौजवानों को बंदूक थमाने की साजिश का विरोध किया गया होता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

जब तक सरफेसी एक्ट का मामला जम्मू कश्मीर उच्च न्यायालय में था, वे निश्चिंत थे। उसमें भी मूल प्रश्न का संबंध अनुच्छेद 35क से जोड़ने की कोशिश हुई थी। लेकिन जब वह मामला सर्वोच्च न्यायालय में आया तो सारा राजनैतिक कुचक्र तार–तार हो गया। अपने फैसले में न्यायमूर्ति जोसफ कुरियन और न्यायमूर्ति रोहिंगटन नरीमन की पीठ ने न केवल जम्मू

कश्मीर उच्च न्यायालय के निर्णय को पलट दिया बल्कि उच्च न्यायालय के निर्णय को परेशान करने वाला बताते हुए राज्य की अपनी संप्रभुता, राज्य संविधान के भारतीय संविधान के समानांतर होने जैसी बातों को निराधार बताते हुए उच्च न्यायालय को याद दिलाया कि जम्मू कश्मीर के निवासी सर्वप्रथम भारतीय नागरिक हैं और राज्य के संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार जम्मू कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और इसे बदला नहीं जा सकता।

वास्तव में इस विरोध के पीछे भय की ग्रंथि है। दशकों से जो झूठ का भ्रमजाल कश्मीर में रचा गया है, उसमें स्थानीय राजनैतिक दलों से लेकर अलगाववादियों तक सभी साझीदार है। विशेष दर्जे के नाम पर गत दशकों में जो कुछ भी हुआ, उसने जहां मुठ्ठी भर लोगों को मालामाल किया है, शक्ति सम्पन्न किया है, वहीं लाखों लोगों को उन मौलिक अधिकारों और मूल–भूत सुविधाओं से वंचित रखा है जो देश के आम नागरिक को सहज ही उपलब्ध है। अनुच्छेद 370 अथवा 35क के निरस्त होने का अर्थ है विशेष दर्जे के उस आवरण का हट जाना जिसके पीछे दशकों की अराजकता, भ्रष्टाचार और लूट के सबूत हैं।

दशकों लम्बी राजनैतिक अराजकता ने व्यवस्था के तमाम पक्षों के बीच ऐसे हित समूहों को जन्म दिया है जिनके हित इस अराजकता में ही निहित हैं। समाधान की कोई भी कोशिश इन्हें भयभीत करती है और वे ऐसे किसी भी सकारात्मक प्रयास को पटरी से उतारने के लिये सक्रिय हो जाते हैं। अतीत में अनेक उदाहरण ऐसे हैं जब स्थितियों को संभालने के प्रयास हुए और राज्य की जनता ने उसका भरपूर समर्थन किया। राज्य में जब–जब निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित किये गये, जनता

ने धमकियों के बावजूद भी बड़ी संख्या में मतदान कर लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपनी आस्था व्यक्त की।

किन्तु राजनीति की बिसात पर यह सभी प्रयास अपेक्षित परिणाम नहीं दे सके। क्योंकि जिन संस्थाओं को लोकतांत्रिक व्यवस्था की रीढ़ माना जाता है, उन्होंने ही न्याय का साथ नहीं दिया। राज्य में चल रहे विश्वविद्यालयों में सक्रिय छात्र और शिक्षक संगठन, बार कोंसिल, मजदूरों और व्यापारियों के संगठन, यहां तक कि विधिक संस्थाएं भी तटस्थता के सिद्धांत से परे जाकर व्यवहार करते दिखते हैं।

उदाहरण के लिये, न्यायालय के सामने एक सरल सा प्रश्न था – अनुसूचित जाति के राजकीय कर्मचारियों की पदोन्नति में आरक्षण लागू होना चाहिये अथवा नहीं। जम्मू काश्मीर आरक्षण अधिनियम 2004 तथा आरक्षण नियमावली 2005 के आधार पर राज्य सरकार के कुछ कर्मचारियों को आरक्षण का लाभ देते हुए पदोन्नति दी गयीं जिससे वे वरिष्ठता क्रम में उनसे ऊपर पहुंच गये जिनसे भरती के समय वे कनिष्ठ थे। पीड़ित पक्ष ने न्यायालय के सम्मुख याचिका दायर की।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं ने यह तर्क दिया कि 2004 का अधिनियम संघीय संविधान के 77वें संविधान संशोधन के आधार पर लाया गया है जिसे राष्ट्रपति के आदेश द्वारा राज्य में लागू नहीं किया गया है। प्रतिवादियों का तर्क था कि जब मूल अधिनियम राज्य में लागू है तो उसके संशोधन को स्वतः लागू मानना चाहिये। न्यायालय को इस पर फैसला देना था कि दोनों में से कौन सा मत विधिसम्मत है और राज्य में पदोन्नति में आरक्षण की सुविधा लागू होने योग्य है अथवा नहीं।

इस मतभिन्नता की पृष्ठभूमि में 16 नवम्बर 1992 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन्द्रा साहनी व अन्य बनाम भारतीय संघ मामले में सुनाया गया निर्णय है। इस वाद की जड़ें मंडल कमीशन तक जाती हैं जिसकी रिपोर्ट लागू किये जाने के विरुद्ध यह याचिका दायर की गयी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में पदोन्नति में आरक्षण को गलत ठहराया। उनका मानना था कि रोजगार पाने के अवसर का उपयोग करने के बाद उसे वंचित नहीं माना जाना चाहिये।

1977 और 1989 में क्रमशः जनता पार्टी और जनता दल ने इसे लागू करने का प्रयास किया किन्तु परिणाम तक पहुंचने से पहले ही दोनों बार जनता सरकारों का पतन हो गया। 1992 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने राजनैतिक निर्णय लेते हुए पदोन्नति में आरक्षण सुनिश्चित करने वाले प्रावधान 77वें संविधान संशोधन विधेयक के माध्यम से जोड़ कर इन्द्रा साहनी केस में दिये सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को निष्प्रभावी कर दिया।

संदर्भित मामले में सबसे पहले यह मामला न्यायमूर्ति धीरज सिंह ठाकुर की एकल पीठ के सम्मुख प्रस्तुत हुआ जिन्होंने इसे जम्मू काश्मीर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को इस निवेदन के साथ सौंपा कि वाद के महत्व को देखते हुए इसे बड़ी बेंच को सौंपा जाय। मुख्य न्यायाधीश ने इसे जस्टिस हसनैन मसूदी और जस्टिस जनकराज कोतवाल की खण्डपीठ को भेजा।

न्यायमूर्ति धीरज सिंह ने वाद को केन्द्रित करते हुए कहा कि – "क्या इन्द्रा साहनी बनाम संघ के वाद में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जो प्रोन्नति के मामले में आरक्षण का निषेध करता है,

जम्मू काश्मीर आरक्षण अधिनियम 2004 तथा उसके प्रकाश में बनाये गये नियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16(4ए) के लागू न होने की स्थिति में जम्मू काश्मीर राज्य में प्रवर्तित हो सकता है।

खण्डपीठ ने वाद को बहुआयामी मानते हुए समाधान के लिये निम्न प्रश्नों को इस परिधि में जोड़ा –

1. राज्य के लिये संविधान सभा का गठन और पृथक संविधान की रचना क्यों की गयी जबकि अन्य किसी भी रियासत, जिसका भारत में विलय हुआ में ऐसा नहीं हुआ ?

2. अन्य राज्यों की भांति भारतीय संविधान के सभी प्रावधान और समय–समय पर उनमें होने वाले संशोधन जम्मू काश्मीर में लागू क्यों नहीं होते हैं ?

3. क्या भारतीय संघ में अधिमिलन के उपरान्त संघीय संविधान के अनुच्छेद 1 और प्रथम अनुसूची में शामिल किये जाने के पश्चात भारतीय संविधान के राज्य में लागू प्रावधानों में होने वाले संशोधन भी स्वतः लागू हो जाते हैं ?

4. क्या राज्य की संविधान सभा द्वारा राज्य के संविधान निर्माण के पश्चात, एक अस्थायी प्रावधान के रूप में अनुच्छेद 370 की शक्तियां समाप्त हो जाती हैं, और राज्य में लागू होने वाले संविधान के प्रावधानों को राष्ट्रपति संशोधित नहीं कर सकते ?

5. क्या अनुच्छेद 370 के खण्ड 1 का उपखण्ड(डी) राज्य में लागू होने वाले संघीय संविधान के प्रावधानों में लघु संशोधनों और परिवर्तनों तक सीमित करता है तथा

बदलने, जोड़ने, विलोपित करने तथा निरस्त करने से रोकता है ?

निश्चित रूप से खण्डपीठ को यह अधिकार है कि वह तय करे कि अपने निर्णय तक पहुंचने के लिये किन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक समझती है। लेकिन यह प्रश्न पीठ के सम्मुख उपस्थित याचिका के निस्तारण के लियें हों, यह स्वाभाविक रूप से अपेक्षित है। संदर्भित निर्णय में पीठ अपने निर्णय का दो–तिहाई भाग यह स्थापित करने के प्रयास में लगाती है कि अनुच्छेद 370 किस प्रकार स्थायी रूप ग्रहण कर चुका है। इस प्रयास में अनेक स्थानों पर वह अपने मत की पुष्टि के लिये तत्कालीन राजनेताओं के बयानों को भी प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करती है।

न्यायमूर्ति हसनैन मसूदी और न्यायमूर्ति जनक राज कोतवाल की खंडपीठ ने अपने 60 पृष्ठों के फैसले में कहा, 'अस्थायी प्रावधान के शीर्षक के तौर पर खण्ड 21 में अस्थायी, परिवर्तनकारी और विशेष उपबंधों के शीर्षक से शामिल किया गया अनुच्छेद 370 संविधान में स्थायी जगह ले चुका है'। पीठ ने कहा कि इस अनुच्छेद को संशोधित नहीं किया जा सकता, हटाया नहीं जा सकता या रद्द नहीं किया जा सकता क्योंकि देश की संविधान सभा ने उसे भंग किए जाने से पहले इस अनुच्छेद को संशोधित करने या हटाए जाने की अनुशंसा नहीं की थी।

यह तर्क ऐसा ही है मानो किसी लड़की के पिता की मृत्यु हो जाये और तर्क दिया जाय कि अब उसका विवाह नहीं हो सकता क्योंकि जिस पिता को यह जिम्मेदारी निभानी थी वह मर चुका है। यह ठीक है कि राज्य की संविधान सभा अनुच्छेद

370 की समाप्ति अथवा संशोधन की सिफारिश किये बिना भंग हो गयी है किन्तु उसकी सिफारिश पर जिस राष्ट्रपति को आदेश जारी करना था वह संस्था मौजूद है।

निर्णय राष्ट्रपति को करना है और उसके लिये कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। राष्ट्रपति जब चाहें तब फैसला ले सकते हैं। इसी प्रकार, संसद को संविधान के मूलढ़ांचे को छोड़ अन्य सभी प्रावधानों में संशोधन करने का अधिकार है और अनुच्छेद 370 निश्चित रूप से मूल ढ़ांचे का हिस्सा नहीं है।

पीठ के सम्मुख अनुच्छेद 370 के स्थायी अथवा अस्थायी दर्जे का प्रश्न था ही नहीं, फिर भी इस प्रश्न पर विचार के लिये पीठ द्वारा व्यय की गयी समय और ऊर्जा से यह संकेत मिलते हैं कि पीठ की रुचि इस वाद के माध्यम से कुछ अन्य मुद्दों और लोगों को भी संबोधित करने में थी।

यह संकेत तब और अधिक उभर कर आता है जब इसे एक अन्य खण्डपीठ द्वारा भूपेन्द्र सिंह सोढ़ी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और संतोष गुप्ता बनाम यूनियन ऑफ इंडिया मामलों में दिये गये निर्णय के साथ रख कर देखते हैं। इस वाद में भी पीठ ने अनुच्छेद 370 के स्थायी होने और उसके कारण संसद के सीमित अधिकारों को सिद्ध करने में काफी श्रम खर्च किया था। क्या कारण है कि वहां की खण्डपीठें बार–बार राज्य की विशेष स्थिति की समीक्षा करने का अवसर ढूंढ़ती हैं।

अनुच्छेद 370 भारतीय संविधान के 21वें भाग में समाविष्ट है जिसका शीर्षक है – अस्थायी, परिवर्तनीय और विशेष प्रावधान। अनुच्छेद 370 के शीर्षक के शब्द हैं – जम्मू काश्मीर के संबंध में अस्थायी प्रावधान। उल्लेखनीय है कि संविधान के

21वें भाग का शीर्षक प्रारंभ में अस्थायी तथा अंतः कालीन उपबंध था। 1962 में 13वां संविधान संशोधन लाकर शीर्षक में विशेष प्रावधान शब्द जोड़ा गया। लेकिन फिर भी अनुच्छेद 370 के साथ अस्थायी प्रावधान शब्द जुड़ा रहा क्योंकि विशेष प्रावधान जम्मू काश्मीर के लिये न होकर नगालैंड के लिये प्रयोज्य था।

इससे यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि न केवल 1949 में, जब अनुच्छेद 370 संविधान का भाग बना, संविधान निर्माताओं की मंशा इस प्रावधान को अस्थायी तौर पर शामिल करने की थी, बल्कि 1962 तक भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया था। यदि तत्कालीन सरकार अथवा संसद की मंशा इसे स्थायी बनाने की होती तो इसे भी संशोधन में शामिल किया जाता। उल्लेखनीय यह भी है कि दोनों ही अवसरों पर संसद में जम्मू काश्मीर के प्रतिनिधि मौजूद थे। 1949 में जब इसे अस्थायी प्रावधान के रूप में संविधान में शामिल किया गया तब तो स्वयं शेख अब्दुल्ला भी संविधान सभा के सदस्य थे।

प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने 21 अगस्त 1962 में जम्मू काश्मीर के एक प्रतिष्ठित लेखक पं प्रेमनाथ बजाज को 21 अगस्त 1962 को लिखे पत्र में कहा – वास्तविकता तो यह है कि संविधान का यह अनुच्छेद, जो जम्मू काश्मीर राज्य को विशेष दर्जा दिलाने का कारण बताया जाता है, उसके होते हुए भी कई अन्य बातें की गयी हैं और जो कुछ किया जाना है, वह भी किया जायेगा। मुख्य सवाल तो भावना का है, उसमें दूसरी और कोई बात नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि पं. नेहरू के मन में भी यह भाव था कि राज्य की शेष देश के साथ यह दूरी क्रमशः समाप्त होगी।

तकनीकी और विधिक बातों से इतर यह भी ध्यान देना होगा कि राज्य के जिन निवासियों के नाम पर यह सब किया जाता है उन्हें इसका कितना लाभ है। अंततः कोई कानून नागरिकों की सुरक्षा और विकास के हेतु से ही बनाया और लागू किया जाता है। जम्मू काश्मीर का आम नागरिक अनुच्छेद 370 की आड़ में लागू किये गये प्रावधानों का बंधक है, पीड़ित है। वह विकास की मुख्य धारा से दूर है। देश के अन्य सभी नागरिकों को सहज उपलब्ध संवैधानिक अधिकारों से वंचित है। अनुच्छेद 370 के अंतर्गत पनपी राजनैतिक व्यवस्था लाखों लोगों के हितों की कीमत पर मुठ्ठी भर लोगों के निहित स्वार्थों को पूरा करने का जरिया बन गयी है। वही लोग हैं जो इस दूरी को बनाये रखना चाहते हैं और स्थिति में बदल आने की संभावना से ही कांप उठते हैं।

समय के साथ–साथ धारा 370 सत्ताधारी राजकुलीनों और अफसरशाही, व्यापारियों, न्यायप्रणाली तथा वकीलों के हाथों शोषण का साधन बन चुका है। इससे एक दुष्चक्र स्थापित हो गया है जो अलगाववादी बलों को जन्म देता है और ये बल बदले में 370 को ऐसे पवित्र प्रावधान के रूप में स्थापित करने के लिये वातावरण तैयार करते हैं जिसे छूना भी अपराध है। सामान्य जनता को यह समझने ही नहीं दिया जाता कि दरअसल धारा 370 नहीं अपितु इसका दुरपयोग उन्हें पनपने ही नहीं दे रही है, न्याय नहीं मिल रहा है और आर्थिक विकास में उनकी भागीदारी से भी उन्हें दूर रख रहा है।

आज देश की राजनीति अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग, महिला वंचित आदि मुद्दों के इर्द–गिर्द घूम रही है। देश यह स्वीकार कर चुका है कि समाज की कमजोर कड़ी को ताकत दिये बिना देश की विकास यात्रा पूरी कर पाना संभव

नहीं है। ऐसी स्थिति में किसी एक राज्य में इन वर्गों के साथ जिस प्रकार का भेद–भाव हो रहा है वह किसी भी सभ्य समाज में अस्वीकार्य होना चाहिये। दुर्भाग्य से उन वर्गों के प्रतिनिधित्व की दावेदारी करने वाले भी जम्मू काश्मीर के सवाल पर मौन साध लेते हैं। लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों का तकाजा है कि अब यह जड़ता टूटनी ही चाहिये।